सत्यकाम! सत्यसंकल्प!!

।। श्री सुकृतदेवाय नमः ।।

प्रश्नोत्तरी

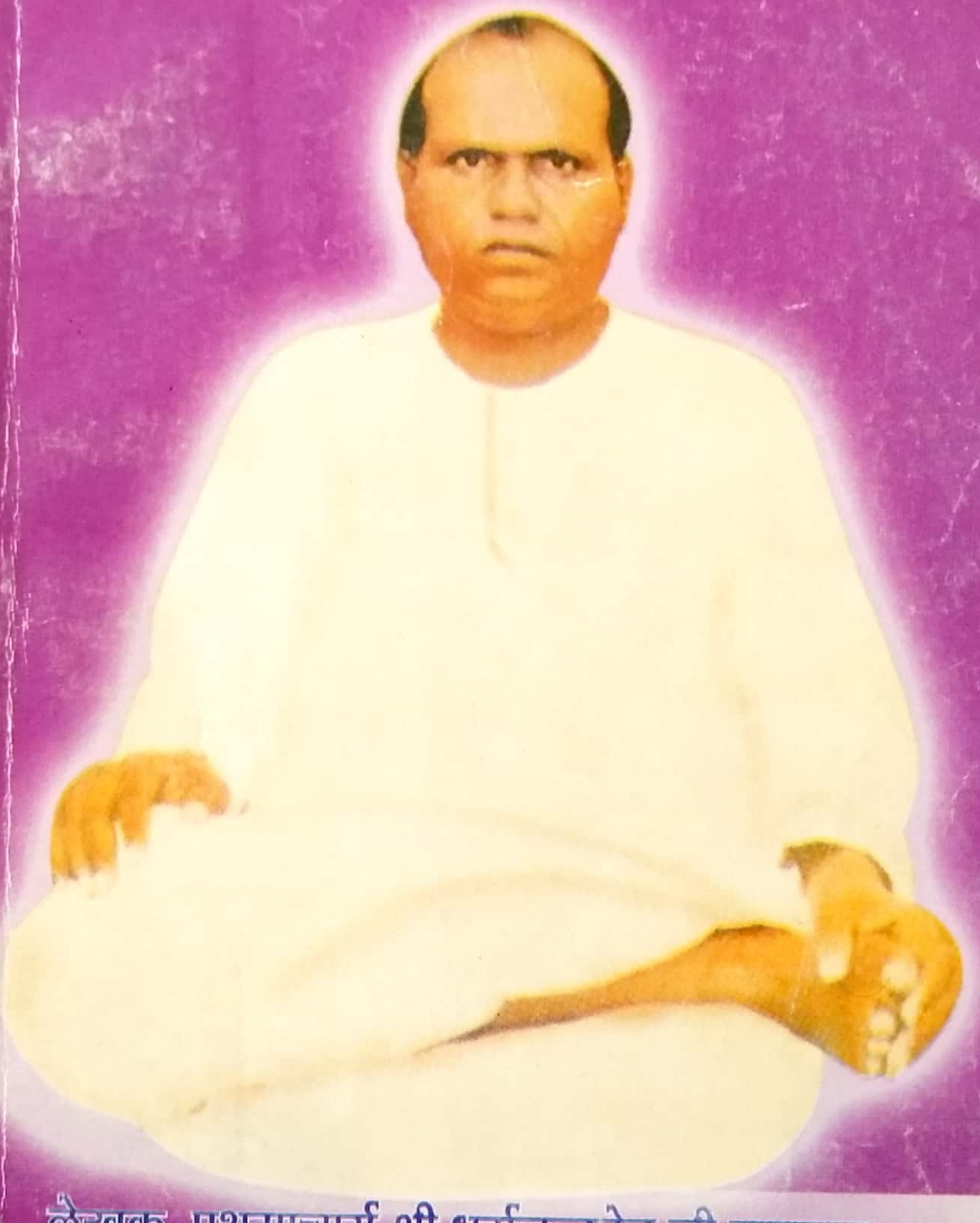

लेखक प्रथमाचार्य श्री धर्मचन्द्रदेव जी महाराज

Scanned with CamScanner

प्रश्नोत्तरी

(खण्ड १)

★ लेखक ★

आचार्य श्री धर्मचन्द्रदेव जी महाराज

सुकृत ऑफसेट प्रेस उस्तापुर महमूदाबाद, गंगातट झूँसी, प्रयाग (उ०प्र०)

Scanned with CamScanner

* प्रकाशक :

आचार्य श्री स्वतन्त्रदेव जी महाराज

उस्तापुर महमूदाबाद, गंगातट

झूँसी, प्रयाग (उ०प्र०)

पिन- 221506

फोन- (0532) 872265

* **प्रश्नोत्तरी**

* **लेखक :**

आचार्य श्री धर्मचन्द्रदेव जी महाराज

* **संस्करण :**

प्रथम संस्करण– 1983 ई०, (2040 वि०)

सदाफलाब्द- 96 - 2000 प्रतियाँ

द्वितीय संस्करण– 1997 ई०, (2054 वि०),

सदाफलाब्द- 109 - 2000 प्रतियाँ

संस्करण तृतीय – अगस्त 2005, सदाफलाब्द–118, 3,000 प्रतियाँ

* सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन सुरक्षित

* **सहयोग राशि :**

चालीस रुपये मात्र

* **मुद्रक :**

सुकृत ऑफसेट प्रेस

उस्तापुर, महमूदाबाद, गंगातट

झूँसी, प्रयाग (उ०प्र०)

पिन- 221506, फोन- (0532) 872265

Scanned with CamScanner

भूमिका

प्रश्नोत्तरी एक संगृहीत रचना है जिसे मैं आध्यात्मिक तत्त्वज्ञान के जिज्ञासु, भक्त, शिष्य, प्रेमियों के लिए प्रकाशित कर अपने में पूर्ण शान्ति तथा संतोष का अनुभव कर रहा हूँ। इसकी रचना किसी एक समय में नहीं हुई है, अपितु इसकी रचना विभिन्न प्रान्तों के विभिन्न स्थानों, विभिन्न तरह के लोगों के मध्य जो दुरूह प्रश्न आए उस समय हुई, इसलिए इसका महत्त्व बढ़ जाता है।

आचार्य देव जी महाराज ने श्री सद्गुरुदेव जी महाराज के बाद ब्रह्मविद्या विहंगम योग के प्रचार-प्रसार का बीड़ा उठाया और तूफानी गति से प्रचार-प्रसार में लग गये। इस बीच आप महाराष्ट्र, गुजरात, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल आदि प्रान्तों में गये। वहाँ के भाषा-भाषी लोगों के मध्य अपने ज्ञान, सिद्धान्त को बताया, किन्तु हर क्षेत्र में व्याप्त साम्प्रदायिकता के कारण विभिन्न धर्म, मजहब के लोगों ने आपके मार्ग में बाधक बनने की कोशिश की। कोई कहता ज्ञानवान् बन्धन में क्यों पड़ता है? तो कोई कहता योग का प्रारम्भ कहाँ से होता है? लेकिन इसकी परवाह आप को कहाँ थी? आप तो विहंगम योगी थे। आपके सामने कोई टिकने वाला कहाँ था? और आप जो सुन्दर उत्तर दिए उसका संग्रह इस पुस्तक में किया गया है।

Scanned with CamScanner

आपके सामने ऐसे भी लोग आए, जिनका कहना था कि स्वतन्त्र साधन तो हो सकता है? क्या जप भक्ति नहीं है? कर्म से क्या होता है? किन्तु आपने स्पष्ट कहा कि नहीं, स्वतन्त्र साधना नहीं हो सकती। स्वतन्त्र जीवन अध्यात्म पथ में नष्ट हो जायेगा। स्वतन्त्र जीवन किसी भी क्षेत्र में आगे नहीं बढ़ सकता। मनमुखी साधक को सफलता नहीं प्राप्त हो सकती। बिना मार्गदर्शक के कोई भी पथिक आगे नहीं बढ़ सकता। सद्गुरु के प्रकाश में ही ब्रह्मविद्या की पवित्र प्रभा प्रकट होती है। एक प्रेमी ने कहा कि सत्त्व, रज, तम तीनों गुण एक समान रहते हैं। तीनों गुण का भाव एक साथ कैसे है? आपने उनके प्रेम को देखते हुए बहुत ही प्रसन्न होते हुए कहा कि प्रकृति के हरेक पदार्थों में तीनों गुण हैं। तीनों गुणों की क्रिया शरीर के बाह्य जगत् में सदैव देखी जाती है। किन्तु तीनों गुणों के होते हुए भी विकास भाव से जिस गुण का भाव रहता है वह गुण प्रकट होता है और दूसरा गुण निम्न स्तर में हो जाता है।

इसके अलावा ब्रह्म क्या है? जीव क्या है? सद्गुरुसत्ता क्या है? प्रकृति, मन क्या है? तथा इन सबके स्वरूप क्या हैं? इनकी प्राप्ति व मुक्ति का रास्ता क्या है? योग-साधकों के लिए आहार-विहार कैसा होना चाहिए? जिससे साधना का क्रम अहर्निश चले। कई तार्किक प्रश्न जिससे कि संशय, भ्रम में पड़े साधक को शुद्ध ज्ञानदीप-पुंज का आगमन होगा तथा अध्यात्मप्रेमी भक्त, शिष्य को विमल सद्गुरु-ज्ञान, सिद्धान्त के अमृत-रसास्वादन का आनन्द प्राप्त होगा। ऐसे में आये मन द्वारा मलिन भावना का भी नाश होकर शुद्ध ज्ञान की प्राप्ति होगी। इस आशा के साथ अध्यात्मप्रेमी भक्त, शिष्य इससे समुचित लाभ उठाकर आध्यात्मिक आनन्द का आस्वादन करेंगे। तभी मैं अपने परिश्रम की पूर्ण सार्थकता प्राप्त कर सकूँगा।

अन्त में, मैं प्रश्नोत्तरी के प्रकाशन-सम्बन्धी हरेक प्रकार की

Scanned with CamScanner

अशुद्धियों के लिए विवेकी पाठकों से क्षमा-प्रार्थना करता हूँ और पूरी आशा करता हूँ कि आप उन सारी अशुद्धियों को शुद्ध कर पढ़ेंगे और मुझे सूचित करेंगे, जिससे अगले संस्करण में उन सारी अशुद्धियों का विचारपूर्वक संशोधन किया जा सके।

आचार्य स्वतन्त्रदेव

वृत्तिकूट आश्रम पकड़ी,

बलिया (उ०प्र०)

Scanned with CamScanner

द्वितीय संस्करण सम्बन्धी प्रकाशक के वक्तव्य

ब्रह्मविद्या विहंगम योग विश्व का प्राचीनतम चेतन विज्ञान है, जिसके द्वारा इसके अभ्यास करने वाले अध्यात्म-पथिकों को आत्मा, परमात्मा, सद्गुरु, काल तथा प्रकृति-सम्बन्धी साक्षात् अनुभव होता है। साधना-क्रम में साधकों के हृदय में तथा अध्यात्म-पिपासुओं के मन-मस्तिष्क में अनेक प्रश्न उभरते रहते हैं, उनका समाधान तो साधना-क्रम में साधकों को सद्गुरु-कृपा से हो जाया करता है, परन्तु कतिपय प्रश्नों के स्पष्ट उत्तर आचार्यश्री से प्राप्त करने के निमित्त करीब-करीब सबके अन्दर अभिप्सा जाग्रत रहती है। इसे ही देखकर परमपूज्य पिताश्री, आदित्य विहंगम योगी, प्रथम परम्परा सद्गुरु अनन्त श्री आचार्य धर्मचन्द्रदेव जी महाराज ने बहुत से सम्भावित प्रश्नों का संकलन कर उनके उत्तर के साथ 'प्रश्नोत्तरी' शीर्षक पुस्तक की रचना की है। इसमें विभिन्न स्तर के योग-साधकों तथा अध्यात्म-पिपासुओं के प्रश्नों के उत्तर, जिस हृदयग्राही एवं स्पष्टरूप से दिये गये हैं, जिससे ऐसा बोध होता है कि वे योगाभ्यासी और अध्यात्म के जिज्ञासु आचार्यश्री के सम्मुख बैठकर अपने प्रश्नों का समाधान प्राप्त कर रहे हैं। 'प्रश्नोत्तरी' पुस्तक का (खण्ड-१) अपने आध्यात्मिक प्रेस, मु०+पो०- गड़वार, जिला- बलिया (उ०प्र०) से मुद्रित कराकर प्रथम बार सन् १९८३ ई०, सं० २०४० वि०, सदाफलाब्द ९६ में मेरे द्वारा प्रकाशित किया गया। इसका समादर प्रत्येक वर्ग के बुद्धिजीवियों, साधकों एवं सामान्य नागरिकों के द्वारा किया गया।

इनमें आये कुछ प्रश्न ऐसे भी हैं जो आचार्यश्री के ब्रह्मविद्या विहंगम योग के प्रचारार्थ भारत-भ्रमण के अवसर पर अनेक सम्प्रदायों, धर्मों, योगों के अनुयायियों तथा अनेक अध्यात्म के सच्चे अन्वेषक

जिज्ञासुओं के द्वारा किये गये हैं और जिनका निर्भ्रान्त उत्तर सुनकर सभी के भ्रम का निवारण हुआ। आचार्यश्री के महान् व्यक्तित्व की उन्होंने भूरि-भूरि प्रशंसा की तथा उनके चरणों में नतमस्तक होकर ब्रह्मविद्या विहंगम योग की दीक्षा के लिए उन्होंने प्रार्थना भी की।

'प्रश्नोत्तरी' की माँग और अध्यात्म-प्रेमियों के लिए इसकी उपादेयता को देखते हुए, इसके द्वितीय संस्करण का प्रकाशन अपने महर्षि सदाफलदेव आश्रम, झूँसी (प्रयाग) स्थित 'सुकृत ऑफसेट प्रेस' से करते हुए मुझे अत्यन्त हर्ष और सन्तोष की अनुभूति हो रही है। इस संकलन में आये प्रश्न अधिकांशतः योगाभ्यासियों तथा अध्यात्म-पिपासुओं के समक्ष आते रहते हैं। अतः इसका मनोयोगपूर्वक स्वाध्याय उनके प्रश्नों के समाधान में सक्षम होगा, जैसा कि अब तक अन्य ऐसे लोगों का होता रहा है। इसी आशा के साथ में अद्वितीय प्रश्नोत्तर के रूप में रचित इस पुस्तक को योग-साधकों और जिज्ञासुओं के समक्ष प्रस्तुत कर रहा हूँ। मुझे पूर्ण विश्वास है कि इसके स्वाध्याय से सभी धर्म, सम्प्रदाय, जाति, वर्ग, देश के नागरिक लाभान्वित होंगे, क्योंकि अध्यात्मविद्या किसी भी जाति, धर्म, देश विशेष के व्यक्तियों के लिए नहीं होती। वह होती है-- सम्पूर्ण विश्व की मानवता के लिए। अस्तु!

विश्व के मानवमात्र
के परम शुभचिन्तक
आचार्य स्वतन्त्रदेव
द्वितीय परम्परा सद्गुरु
महर्षि सदाफलदेव आश्रम,
उस्तापुर महमूदाबाद, गंगातट
झूँसी, प्रयाग (उ०प्र०)

वैशाख पूर्णिमा
सम्वत् २०५४ वि०,
मई, १९९७ ई०,
सदाफलाब्द १०९

उद्घोष

अद्भुत मारग योग विहंगम, मैं तुमको बतलाऊँगा।
यदि विधिवत तुम साधन करिहो, अमर लोक पहुँचाऊँगा।।
प्रकृति आधार तोहि छोड़वाऊँ, निज स्वरूप ठहराऊँगा।
सुरति उलटि के गगन चढ़ाऊँ, डोरी मकर धराऊँगा।।
पिण्ड ब्रह्माण्ड शून्य जो अरषठ, ता ऊपर बैठाऊँगा।
अनुभव दरशे मोती बरसे, अमिय नद्द अन्हवाऊँगा।।
शुद्ध रूप तोहि हंस बनाऊँ, परम पुरुष दिखलाऊँगा।
वहाँ की दृश्य कौन मैं वरणों, वाणी बुद्धि न पाऊँगा।।
महाप्रभु अनन्त दयामय, उनसे तोहि मिलाऊँगा।
कहैं 'सदाफल' परमानन्दा, आवागमन मिटाऊँगा।।

Scanned with CamScanner

प्रश्नोत्तरी

***प्रश्न-* श्री सद्गुरु सदाफलदेव जी महाराज ने कितने दिनों की तपस्या के बाद समाधि, जीवन्मुक्त अवस्था की प्राप्ति की।**

उत्तर- १७ वर्षों तक घोर परिश्रम करके गंगा-यमुना के पवित्र तटों पर साधन, तपस्या, विहंगम योगाभ्यास द्वारा समाधि-अवस्था की प्राप्ति की।

***प्रश्न-* उन्होंने किस मार्ग से समाधि-अवस्था की प्राप्ति की?**

उत्तर- विहङ्गम योग समाधि के द्वारा ब्रह्म-प्राप्ति, जीवन्मुक्त अवस्था की प्राप्ति की।

***प्रश्न-* सद्गुरुदेव ने प्रथम कोटि का साधन कितने दिनों तक किया था?**

उत्तर- बाहर-बाहर एकान्त स्थान एवं अरहर और ईख के खेतों में बैठकर दिन-रात तीन वर्षों तक साधन किया, उसके पश्चात् गुहा में भी इसका साधन-अनुष्ठान किया था।

***प्रश्न-* गुहा में कैसे रहते थे?**

उत्तर- योगासन में स्थित ब्रह्मानन्द में सदैव निमग्न रहते थे। बाहर से कोई दर्शन नहीं पाता था। सेवक समय पर उन्हें फलाहार, दूध देता था। आप सदैव अन्तर्मुख हो निशिदिन योग-समाधि में रहते थे। आपके पास कोई आता नहीं था। आप सदैव गुहा में एकाकी रह अपने साधन में तत्पर रहते थे।

Scanned with CamScanner

प्रश्न- आप कब रात्रि में निकलते थे?

उत्तर- तीन बजे ब्राह्ममुहूर्त्त में गुहा से निकल कर नित्य क्रिया करके गुहा के अन्दर चले जाते थे। दिन में कभी बाहर नहीं रहते थे। कभी-कभी रात्रि में गुहा से निकल कर बाहर मैदान में टहलते थे।

प्रश्न- आप वस्त्र क्या पहनते थे?

उत्तर- लिंगोट और कभी अल्फी का व्यवहार करते थे।

प्रश्न- आप अवधूत वृत्ति में भी थे?

उत्तर- हाँ! बाहर बन, श्मशान भूमि तथा एकान्त स्थानों में रहते थे। प्रेमी तथा निज घर के लोग उन्हें भोजन खिला आते थे।

प्रश्न- आप षट् क्रिया का भी साधन करते थे?

उत्तर- हाँ, आप हठयोग की सारी क्रियायों को जानते थे। प्राकृतिक विज्ञान के पूर्णवेत्ता थे। आपने हठयोग के सम्बन्ध में "योग चन्द्रिका" नामक ग्रन्थ की रचना की।

प्रश्न- आप चार गुरुओं में कौन-सा गुरु हैं।

उत्तर- नित्य अनादि सद्गुरु द्वारा उपदिष्ट अभ्याससिद्ध गुरु हैं।

प्रश्न- क्या सद्गुरु भी चार प्रकार के हैं?

उत्तर- हाँ! नित्य अनादि सद्गुरु, स्वयंसिद्ध गुरु, अभ्य ससिद्ध गुरु, परम्परा गुरु-- ये चार प्रकार के सद्गुरु होते हैं।

प्रश्न- आपने अध्यात्मविद्या के किस सद्ग्रन्थ का निर्माण किया है?

उत्तर- 'स्वर्वेद', इस ग्रन्थ को आपने उत्तराखण्ड हिमालय में निज स्थापित शून्य शिखर आश्रम पर लिखा।

प्रश्न- आप ने वेदों को भी पढ़ा था?

उत्तर- हाँ! चारों वेदों को पढ़ा था। वेदों के योग-विषयक आध्यात्मिक मन्त्रों पर भी आपने भाष्य लिखा है।

Scanned with CamScanner

प्रश्न- आपने वैदिक साहित्य का अध्ययन किया था?

उत्तर- चार वेद, ग्यारह उपनिषदें, षट् दर्शन, समस्त धर्मशास्त्र, महाभारत और सन्तमत के समस्त ग्रन्थों के आप पूर्ण विद्वान्, तत्त्वदर्शी थे।

प्रश्न- आप प्रतिदिन यौगिक व्यायाम करते थे?

उत्तर- हाँ! आप अपने को स्वस्थ और नीरोग रखने के लिए मुद्रा, प्राणायाम, आसन और ऋतु-परिवर्तन में षट् क्रिया करते थे।

प्रश्न- आपने वेदों का भाष्य कब किया?

उत्तर- जब ब्रह्मविद्या का प्रचार करने लगे, तब वेदों के अन्दर ब्रह्मविद्या किस प्रकार से बतलायी गई है, इसे प्रकाश में लाने के लिए उन मन्त्रों का अलग से संकलन कर उसपर अपना भाष्य लिख दिया।

प्रश्न- भाष्य में कौन से ग्रन्थ की सहायता ली गयी?

उत्तर- यास्क के निरुक्त और उपनिषद्, संस्कृत कोष और विद्वानों के भाष्य।

प्रश्न- क्या वेदों पर ऋषिभाष्य नहीं है?

उत्तर- नहीं! वेदों पर ऋषिभाष्य होंगे जो वर्त्तमान समय में प्राप्त नहीं होते। जितने भाष्य हैं सभी विद्वानों के हैं, जो साहित्य और भाषा के पण्डित हैं। ऋषिभाष्य प्राप्त नहीं होते।

प्रश्न- आध्यात्मिक ऋचाओं के अर्थ नहीं हैं? जिसके लिए आपने अपना भाष्य लिखा।

उत्तर- मन्त्रों के शब्दार्थ तो होते हैं, परन्तु उसका आशय क्या है? ऋषि ने उस तत्त्व को कैसे प्राप्त किया है? उसमें रहस्य तत्त्व क्या है? इसका आशय उन भाष्यकारों ने नहीं बतलाया है। अध्यात्मविद्या की रहस्यपूर्ण ऋचाओं के भाव को ब्रह्मनिष्ठ महर्षि ही जान सकता है, कोरा कागजी पण्डित नहीं। क्योंकि

Scanned with CamScanner

ब्रह्मविद्या योग अनुभव, समाधि की वस्तु है, कोरे अध्ययन की नहीं। सद्गुरु अध्यात्मविद्या के सूर्य, पूर्ण ब्रह्मनिष्ठ, वैदिक महर्षि थे।

प्रश्न- अथर्ववेद तो ऋषियों का वेद है?

उत्तर- चारों वेद मनुष्य मात्र के लिये हैं, किन्तु अथर्ववेद में ब्रह्मविद्या के गूढ़ विषयों का वर्णन है। इसलिए अथर्ववेद योगियों का वेद कहा गया है।

प्रश्न- वेदों का सद्गुरुदेव जी ने कैसे प्रचार किया?

उत्तर- वेदों की समस्त विद्याओं की आत्मा ब्रह्मविद्या है और आप ब्रह्मविद्या योगमार्ग के प्रचारक हैं। ब्रह्मविद्या का प्रचार ही वेदों का प्रचार है। जब ब्रह्मविद्या का प्रचार होगा, तब वैदिक आध्यात्मिक तत्त्वज्ञान का प्रचार एवं मानव-जाति का उत्थान होगा। ब्रह्मविद्या का अधिकारी मनुष्य मात्र है।

प्रश्न- वेद तो ज्ञान है, पुस्तक नहीं?

उत्तर- वेद तो ज्ञान है परन्तु उस ज्ञान को संसार के कल्याण के लिए ऋषियों ने संग्रह किया है। लिपिबद्ध करके संहिता बनाया है।

प्रश्न- वेद कब प्रकट हुए?

उत्तर- मानव-जाति के विकास के लिए सृष्टि के प्रादुर्भाव में ही वेद प्रकट हुए।

प्रश्न- सृष्टि के आदि में ऋषियों को कौन पढ़ाया था?

उत्तर- पूर्व जन्म की शुद्ध और संस्कृत आत्मायें सदैव पढ़ी रहती हैं। सृष्टि के आदि में ही ब्रह्मविद्या के गुरु हिरण्यगर्भ प्रकट हो जाते हैं और ईश्वरीय ज्ञान के सम्बन्ध होने पर सारे ज्ञान आपे-आप ऋषियों की आत्मा में प्रकट हो जाते हैं। पढ़ने की प्रणाली ऋषियों ने बनाई है, जो सर्वसामान्य नियम

Scanned with CamScanner

है। विशेष पुरुष अल्पकाल में सारे ज्ञान को प्राप्त कर लेते हैं। ऐसे पुरुष अल्प सहायता से सारे शास्त्र और अनुभवों को प्राप्त कर लेते हैं, अतएव मानव-जाति के कल्याण करने वाले ऋषिजन स्वतः सुकृतदेव अनुशासित अनुभवसिद्ध सद्‌ज्ञानी हैं। उन्हें बाह्यज्ञान से ज्ञान नहीं होता।

प्रश्न- ज्ञान की कितनी धाराएँ होती हैं?

उत्तर- ज्ञान की चार धाराएँ होती हैं-- शुद्ध ब्रह्मज्ञान, ब्रह्म-जीव मिश्रित ज्ञान, शुद्ध आत्मज्ञान और आत्मा-प्रकृति मिश्रित ज्ञान। ये ही ज्ञान के चार प्रकार हैं। वेदों में इन चार धाराओं के मन्त्र, ऋचायें प्राप्त होती हैं।

प्रश्न- महर्षि सदाफलदेव जी ने सिद्धि-विभूतियों के लिए क्या कहा है?

उत्तर- साधन, भक्ति में अत्यन्त घातक और विष बतलाया है।

प्रश्न- सद्‌गुरुदेव ने देहत्याग के पश्चात् जो आकाशवाणी की थी, क्या वह कोई विभूति नहीं है?

उत्तर- नहीं! वह योगबल है। विशुद्ध विहङ्गम योगी में ये शक्तियाँ स्वाभाविक रूप से प्रकट होती हैं। अतएव सद्‌गुरुदेव ने अपने विशुद्ध शक्ति से आकाशवाणी किया था। यह ऐश्वर्य महान् योगियों को होता है। अन्य समान्य सन्त, महात्माओं में ऐसा नहीं हो सकता। सद्‌गुरुदेव अध्यात्मविद्या के सूर्य, समस्त जड़-चेतन, ज्ञान-विज्ञान के सम्राट् सद्‌गुरु हैं।

प्रश्न- योगिराज भगवान् सद्‌गुरु सदाफलदेव जी महाराज की प्रतिष्ठा क्या है?

उत्तर- उन्होंने पाँच सौ वर्षों की भूली हुई ब्रह्मविद्या को अपने योग-समाधि में प्रत्यक्ष अनुभव कर विश्व के कल्याण के लिए प्रकट किया, घोर परिश्रम करके समाधि, जीवन्मुक्त अवस्था की प्राप्ति की। चारों वेदों का अध्ययन किया। चारों वेदों के ब्रह्मविद्यापरक मन्त्रों का भाष्य किया। अपने अनुभूति ज्ञान को प्रकट करने

Scanned with CamScanner

वाले 'स्वर्वेद' महासद्ग्रन्थ की रचना की। ३५ सद्ग्रन्थों का निर्माण किया। देश में भ्रमण कर अनेक स्थानों पर आश्रम-निर्माण और अध्यात्म-पिपासुओं को भक्ति मार्ग का सदुपदेश किया। राजनीति में विश्वराज विधान का निर्माण किया। आप का उद्देश्य भूमण्डल में ब्रह्मविद्या योगमार्ग का उपदेश कर संसार के भवतपित अध्यात्म-पिपासु जीवों को सुख-शान्ति प्रदान करना है। आपने अनेक को अपनी कृपादृष्टि से सुष्मन-प्रवाह किया है जो अत्यन्त दुर्लभ, दुःसाध्य है, यह आपकी महान् महिमा है।

प्रश्न- आपने देहत्याग कैसे किया?

उत्तर- अपनी आत्मिक शक्ति के प्रभाव से सारी बिखरी हुई शक्तियों को एकत्रित कर क्रमशः स्थूल शरीर का त्याग कर देह से निकलते गये और प्राण, मन, चक्षु, वाणी को अन्त में महाशून्य में लेकर योगलीला करने लगे। वहाँ से सबको देखते, सबकी वाणी को सुनते और आकाशवाणी तथा महानाद करके अपने शरीर का त्याग किया।

प्रश्न- योगी शरीर छोड़कर फिर संसार में प्रकट होता है?

उत्तर- विदेहमुक्त आत्मायें संसार में नहीं प्रकट होतीं। परन्तु जो आत्मायें संसार के कल्याण के लिये जगत् में आती हैं, वे विशिष्ट विभूति इच्छानुसार पुनः जगत् में प्रकट होती हैं। योगिजन संसार-कल्याण के लिए बार-बार आते हैं। युग-युग में सद्गुरु जन संसार में प्रकट हो भवतपित जीवों का कल्याण करते हैं।

प्रश्न- क्या सद्गुरुओं की मृत्यु नहीं होती?

उत्तर- नहीं! वे अपने शरीर का कारणवशात् या स्वतन्त्ररूप से त्याग करते हैं।

प्रश्न- क्या बार-बार आना सद्गुरु के लिए अनुकूल है?

Scanned with CamScanner

उत्तर- सद्गुरु का मरण क्रीड़ामात्र है, वह मृत्यु में अपने देह का विलय कर देते हैं और इच्छानुसार प्रकट होते हैं। सद्गुरुओं का बार-बार आना संसार में बन्धन नहीं, बल्कि इससे मुक्त का स्वरूप प्रकट होता है। मुक्त जीव ही स्वतन्त्र प्रकट होता है। कालवश मृत्युप्राप्त जीव कर्म विवश हो अज्ञान अवस्था में ईश्वरीय नियम के अनुकूल जन्म लेते हैं, प्रकट नहीं होते। योगिजन ही प्रकट होते हैं। उनके जन्म को दिव्य जन्म कहते हैं और वे योग-माया से प्रकट होते हैं। अपनी प्रकृति को अधीन कर स्वतन्त्र जीवन का निर्माण करते हैं। यही जीवन्मुक्त योगियों का लक्षण है। अतएव सद्गुरु संसार में प्रकट होते हैं। यह प्रत्यक्ष, अनुभवसिद्ध, प्रमाणित सिद्धान्त है।

प्रश्न- क्या विदेहमुक्त आत्मायें संसार में प्रकट नहीं होतीं?

उत्तर- विदेहमुक्त आत्मायें भी प्रकट होती हैं और संसार के कल्याण के लिए संसार में रह अपने कर्त्तव्य का पालन करती हैं। ऐसे गुरुओं को स्वयंसिद्ध गुरु कहते हैं। स्वयंसिद्ध आत्मायें ईश्वरीय नियम और इच्छानुसार भी संसार में प्रकट होती हैं।

प्रश्न- योगी का स्थूल शरीर माया है?

उत्तर- योगी अपने केन्द्र से सारे कार्यों को करते हैं। उनमें माया का सम्बन्ध देखने मात्र के लिए है। वे अलिप्त और असंग हो चिन्मयस्वरूप में परमानन्द जीवन्मुक्त के स्वरूप को प्राप्त हो, जल कमलवत् संसार में स्वच्छन्द भ्रमण करते हैं। उनको माया का सम्बन्ध नहीं है और वह प्रकृति में रहकर भी प्रकृति से बाहर और जगत् से असङ्ग हैं। ऐसी विदेह अवस्था जीवन्मुक्त आप्त पुरुषों की होती है। सद्गुरुदेव जी महाराज बीस कला सम्पन्न अध्यात्मविद्या के मार्तण्ड थे। आपके लिए जीवन-मरण का स्वरूप सामान्य नियम में नहीं है, आप विशेष सत्पुरुष हैं, जो सांसारिक कल्याण के लिए प्रकट होते हैं।

Scanned with CamScanner

प्रश्न- आपका नामकरण किसने किया था?

उत्तर- बाल्यकाल में अपने माता-पिता ने।

प्रश्न- योगी के अमर होने के कितने स्वरूप हैं?

उत्तर- आत्मा तो अमर है, चाहे वह योगी हो या बद्ध जीव। परन्तु परमाणु-संयोग-वियोग, कल्प-प्रयोग एवं पर-शरीर-प्रवेश– ये तीन संसार में अमर होने के साधन हैं। इन्हीं साधनों द्वारा योगिजन संसार में चिरकाल तक रहते हैं।

प्रश्न- पर-शरीर-प्रवेश का विधान कहाँ है?

उत्तर- वेद, दर्शन में है और अनेक योगी पर-शरीर-प्रवेश के द्वारा संसार में सदैव बने रहते हैं। वे अमर हैं और उनका आना पर-शरीर-प्रवेश द्वारा शीघ्र होता है। यह योगियों की विद्या है। सद्गुरुदेव इसके वेत्ता और आचार्य थे।

प्रश्न- परकाया-प्रवेश कौन करता है?

उत्तर- जो प्रकृति को अधीन रख स्वतन्त्र इन्द्रियों से कार्य करता है। बिना इन्द्रियजय के परकाया-प्रवेश नहीं होता।

प्रश्न- क्या इसको विहंगम योगी ही करता है?

उत्तर- नहीं! प्राकृतिक योगी जो प्रकृति में विदेह हो गया है, ऐसा प्राकृतिक योगी भी करता है। जीवन्मुक्त योगी का यही स्वरूप है। सद्गुरुदेव ने यही कहा था। इस अवस्था को प्राप्त सभी योगी परकाया-प्रवेश और स्वतन्त्र देहत्याग कर सकते हैं। यही योगी की महिमा है। सद्गुरुदेव के अन्दर योग और विभूति दोनों की शक्तियाँ थीं। वे विभूति का सदैव निरादर और योगबल का सदैव सम्मान करते थे।

प्रश्न- क्या अन्तर्धान होना साधन विहङ्गम योग में है?

उत्तर- ये प्राकृतिक, स्वाभाविक शक्तियाँ विहङ्गम योगी के अधीन रहती हैं। प्राकृतिक योगी जिन्हें अपने अनेक संयमों के द्वारा प्राप्त

Scanned with CamScanner

करता है, वे ऐश्वर्य विहङ्गम योग की ऊँचे चेतन भूमि में आपे-आप प्रकट होते हैं। अन्तर्द्धान होना, आकाशवाणी, परकाया-प्रवेश, गुप्त होना, सहस्रों कोसों के दृश्यों को देखना, सहस्रों कोसों पर अपने भक्त के आर्त्त पुकार पर प्रकट हो जाना, लघु, अणु, गुरु बन जाना– ये स्वाभाविक शक्तियाँ विहङ्गम योगी की होती हैं। जिनके अन्दर ये योग, ऐश्वर्य नहीं हैं वह योगी नहीं, बल्कि संसार को धोखा देने वाला, अध्यात्म तत्त्वज्ञान को नष्ट करने वाला, योगतत्त्वहीन संसारी व्यक्ति है। यह योगियों की, विहंगम योग-मर्मज्ञ समाधिस्थ पुरुषों की महान् महिमा है। ये सारे उपरोक्त योग-ऐश्वर्य सद्गुरु सदाफलदेव जी महाराज को विदित हैं। 'सद्गुरु-महिमा' में सद्गुरुदेव की अलौकिक शक्तियों का वर्णन ग्रन्थरूप में किया जायेगा।

जिज्ञासु- कितनी देर तक ध्यानस्थ रहते थे?

आचार्य- विहङ्गम योग की समाधि चढ़ती-उतरती नहीं, वह एक रस रहती है। केवल सहज समाधि और अखण्ड समाधि में अन्तर है। एक आसन से एक दिन, चार दिन, एक सप्ताह, दस दिन, बारह दिन और कई बार १५ दिन तक एक आसन से अखण्ड समाधि में निमग्न हो परमानन्द में लवलीन रहते थे। यह उनकी अखण्ड समाधि है। योगी चिरकाल तक अखण्ड समाधि में रह सोमरस का पान कर आनन्द में निरत रहता है। यह योग की सर्वोत्कृष्ट अवस्था और परिपूर्ण भूमि है।

जिज्ञासु- वे कितने दिनों तक गुहा अनुष्ठान और तपस्या किये हैं?

आचार्य- वृत्तिकूट की गुहा में १२ वर्ष और अन्य स्थानों पर अनुष्ठान करके योगाभ्यास किये हैं। इस प्रकार १७ वर्ष घोर परिश्रम करके समाधि-अवस्था की प्राप्ति सद्गुरुदेव ने की है।

Scanned with CamScanner

जिज्ञासु- *आपके पूर्वज योगिराज बाबा लालजी राय भी योगी थे?*

आचार्य- हाँ योगिराज थे। वे भी अखण्ड समाधि में ६ मास का अनुष्ठान करते थे। लोग कहते हैं कि आसन लगाकर चिरकाल बैठने से उनके नितम्ब (चूतड़) में दीमक लग गये थे। वे १२ वर्ष तक सरयू तट अयोध्या में निवास कर अपने जन्मभूमि में आये और यहीं १०५ वर्ष की आयु में अपने शरीर को छोड़ दिया।

जिज्ञासु- *क्या वे भी योगमार्ग का प्रचार करते थे?*

आचार्य- विशेष प्रचार करने की तो चर्चा नहीं है, किन्तु उनके एक शिष्य की समाधि अपने गाँव में है। उस महापुरुष के सिर पर जब योगिराज लालजी रायजी ने हाथ रखा तो वह पुरुष ध्यानस्थ बैठे ही रह गये। इस स्थिति को देखकर लोगों ने समझा कि इनकी मृत्यु हो गयी, तब लोगों ने उनकी समाधि उसी स्थान पर दे दी। यह स्थान अभी भी दर्शनीय है और सर्वविदित है।

जिज्ञासु- *सद्गुरुदेव ने किस साल से ब्रह्मविद्या योगमार्ग का प्रचार प्रारम्भ किया?*

आचार्य- प्रचार प्रारम्भ किये आज ४० वर्षों से अधिक हुआ। किन्तु सम्वत् १९८९ विक्रमी, अगहन शुक्ल पंचमी से विशेष रूप से प्रचार कार्य होने लगा है।

जिज्ञासु- *आपके अनुयायी भारत के किन-किन प्रान्तों में हैं।*

आचार्य- भारत के कुछ प्रान्तों को छोड़कर अधिक प्रान्तों में आपके अनुयायी, प्रेमी तथा योगमार्ग के साधक, जिज्ञासु हैं। नेपाल, आसाम, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, राजपूताना, बन्बई, बिहार, उत्तर प्रदेश, हिमालय, गुजरात, कठियावाड़, महाराष्ट्र, कच्छ इन सभी प्रान्तों में सद्गुरुदेव ने भ्रमण किया था। इनके अनुयायी इन सर्व स्थानों में हैं।

जिज्ञासु- *प्रारम्भ में योगमार्ग की दीक्षा क्या होती है?*
आचार्य- इन्द्रियों के निरोध के साथ अपनी वृत्ति को अन्तर्मुख करने की शिक्षा है। यही प्रथम कोटि का साधन है।

जिज्ञासु- *योग की कितनी भूमियाँ हैं?*
आचार्य- योग की पाँच भूमियाँ हैं?

जिज्ञासु- *सद्गुरुदेव ने अपने भौतिक शरीर का त्याग कब किया?*
आचार्य- सम्वत् २०१० विक्रमी, माघ सुदी नवमी, गुरुवार, चार बजे सायंकाल योगमुद्रा में आपने शरीर का त्याग किया।

जिज्ञासु- *वह स्थान कौन है?*
आचार्य- गङ्गातट, प्रयाग गोतम क्षेत्र मुंशीबाग की पर्णकुटी में उत्तराभिमुख बैठकर योगासन से इस भौतिक शरीर का त्याग किया।

जिज्ञासु- *भारत में आपके कितने अनुयायी शिष्य होंगे?*
आचार्य- सब स्त्री, पुरुष, बालक, साधु, संन्यासी, सन्त जिनको लेकर इन्होंने उपदेश किया है, वे दस हजार के लगभग होंगे।

प्रश्न- ***सृष्टि के आदि में ब्रह्मविद्या योग का सद्ज्ञान कैसे प्राप्त होता है?***
उत्तर- नित्य अनादि सद्गुरु द्वारा ब्रह्मविद्या का ज्ञान प्राप्त होता है। ब्रह्मविद्या के आदि आचार्य सद्गुरु सुकृतदेव हैं। उन्हीं के मुख से निकला हुआ ज्ञान समस्त वेदादि ग्रन्थों और ऋषियों के आत्मा में आया है। वे सन्तमत ब्रह्मविद्या के आदि आचार्य, हिरण्यगर्भ, अध्यात्म जगत् के पति हैं। वे युग-युग में संसार में प्रकट होकर मोह-निशा में सोये हुए जगजीवों को अपने प्रखर ज्ञान-तेज से जाग्रत करते हैं। भूले हुए जीवों को रास्ते पर लाते हैं। कहीं आकाशवाणी द्वारा, कहीं आत्मा में अपनी ज्ञानशक्ति दे, कहीं प्रकट, साक्षात् दर्शन दे कृतकृत्य कर देते हैं। उनकी विचित्र शक्ति है जो किसी ऋषि, मुनि, योगी या सन्त में नहीं हो सकती। वे जन्म-मरण से रहित नित्य

Scanned with CamScanner

हैं, उनकी प्राकृतिक देह नहीं होती। वे अपनी स्वतन्त्र इच्छानुसार पृथ्वी के सारे खण्डों में कहीं गुप्त, कहीं प्रकट भ्रमण कर अनुरागी, विरही जीवों को अध्यात्म संकेत, अनुभव-रहस्य बतला सुष्मन-प्रवाह कर आत्मिक शक्ति को पूर्ण करते हैं। वही सन्तमत के आदि आचार्य अजगुरु सुकृतदेव हैं; उनका दर्शन विशेष अवस्था और समय पर असंख्य आत्माओं में जो सद्गुरु पदाधिकारी आचार्य हैं, उनको होता है। बिना सद्गुरु के दर्शन से ज्ञान और आनन्द की प्राप्ति नहीं होती। वे सबको देखते हैं, परन्तु उनको कोई नहीं देखता। ऐसा अथर्ववेद में बतलाया है। *'अन्ति सन्तं न पश्यति'* समीप विद्यमान सन्त कोई नहीं देखता। *'देवश्य पश्य काव्यं'* शक्ति को देखो। वह *'न ममार न जीर्यति',* वह न मरता है और न बूढ़ा होता है, ऐसी अथर्ववेद की उक्ति है। इसीलिए सन्तमत वैदिक मत है। सन्तमत के अतिरिक्त जितने सम्प्रदाय कलियुग में ५००० वर्ष के अन्दर चले हैं, वे सभी जीवों के कल्पित अन्धकार मत हैं। इनमें ब्रह्मविद्या का शुद्ध ज्ञान नहीं। जो ज्ञान अनुभव से रहित हो, बुद्धि द्वारा तर्क-वितर्क करके निश्चित होता है, वह भ्रमयुक्त और अशान्ति को बढ़ाने वाला होता है। जीवों के चलाये मत निरापदं और निष्कण्टक नहीं हो सकते। ब्रह्मविद्या के बाह्य तत्त्वज्ञान के कुछ अंश आधुनिक ग्रन्थों में पाये जाते हैं। ब्रह्मविद्या की पूर्ण आभा वेदों में है और हिन्दी में सरस वाणी अनुभवसिद्ध रचना सन्तवाणी है। इसी आधार पर और सन्तों ने भी अपनी रचनायें की हैं। फिर भी सन्तमत का हिन्दी में पूर्णज्ञान बतलाने वाला कबीर साहेब के साहित्य के अतिरिक्त दूसरी कोई रचना नहीं है। जितने सन्त उसके पश्चात् हुए या सन्तमत की झलक में जो कुछ जिन्होंने कहा, उन

Scanned with CamScanner

सबका प्रवर्तकों की मूलनिधि और उनकी रचनाओं का आधार सद्गुरु कबीर साहेब की वाणियाँ हैं।

वेदों की तुलना कबीर साहेब की वाणियों में होती है, वे संस्कृत वाङ्मय हैं और सन्तवाणी हिन्दी भाषा में है। अतएव सन्तमत का शुद्ध ज्ञान जानने वाले इच्छुक सद्गुरु सदाफलदेव-रचित बीजक-भाष्य को पढ़ें और आप रचित 'स्वर्वेद' जो दोहे में है, उससे अपना-अपना आध्यात्मिक लाभ उठावें। वेदवाणी प्राचीन है, उसके भाव की जानकारी में अत्यन्त क्लिष्टता है। इसीलिए आज हिन्दी के युग में अध्यात्म के विद्यार्थियों को सन्तवाणियों और सद्गुरु सदाफलदेव-रचित साहित्य का अध्ययन करना चाहिए। इसीलिए सृष्टि के आदि में ब्रह्मविद्या का सन्देश समस्त ऋषि-महर्षियों को नित्य अनादि सद्गुरु सुकृतदेव द्वारा प्राप्त होता है। बिना गुरु का ज्ञान नहीं होता। इसलिए सद्गुरु द्वारा अपने मानव-जीवन के ऊँचे लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयास करें।

प्रश्न- जीव, ब्रह्म की एकता होती है या नहीं?

उत्तर- जीव, ब्रह्म दोनों दो वस्तु हैं, दोनों चेतन और ज्ञानवान् हैं एवं जीव, ब्रह्म का नित्य सम्बन्ध होने से दोनों में सदैव समीपता है। ब्रह्म व्यापक होने से जीव के साथ सदैव विद्यमान है। योगाभ्यास के द्वारा जब जीव का प्रकृति से सम्बन्ध छूट जाता है, तब जीव को ब्रह्म की प्राप्ति और अपने अन्दर आनन्द का अनुभव होने लगता है। दोनों दो वस्तु होने से दोनों में गुणों का सान्निध्य प्राप्त होता है। दो पदार्थ अलग-अलग होने से कभी एक नहीं हो सकते। फिर अणु और विभु एवं सान्त और अनन्त ज्ञान विशेष सत्ता में एकता कैसे हो सकती है? समाधि में ब्रह्म के गुण जीव में आ जाते हैं। अग्नि में धौंका हुआ लोहा अग्नि का स्वरूप हो जाता है। चेतन और नित्य पदार्थ किसी भी अवस्था में अपने स्वरूप

से नित्य ही होते हैं। दूसरे में मिलकर एक नहीं हो जाते, क्योंकि दोनों अलग-अलग वस्तु हैं। अतएव ब्रह्म की प्राप्ति से प्रकृति का सम्बन्ध नहीं रहता। जीव उसके आनन्द को अनुभव करने लगता है, यही एकता का अभिप्राय है। कारण-कार्य और अंश-अंशी भाव से जीव, ब्रह्म की एकता नहीं होती।

प्रश्न- नित्य कितने पदार्थ होते हैं?

उत्तर- ब्रह्म, जीव, प्रकृति, पुरुष, काल, सद्गुरु– ये छः नित्य अनादि पदार्थ होते हैं। इसके लिए सद्गुरु-रचित स्वर्वेद देखें।

प्रश्न- मोक्ष का स्वरूप क्या है?

उत्तर- बन्धन से छूट जाना मोक्ष है। प्रकृति से सम्बन्ध छूट जाने पर जीव ब्रह्म के आनन्द का अनुभव करता है और स्वच्छन्द, अव्याहत गति से निःशब्द परमानन्द का उपभोग करता है। यही मोक्ष का स्वरूप है।

प्रश्न- सद्गुरु, ब्रह्म एक हैं या दो?

उत्तर- सद्गुरु द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति होती है और ब्रह्म की प्राप्ति जब जीवन में हो जाती है, तब उसके गुण जीव के अन्दर आने लगते हैं, फिर विशिष्ट आत्मा सद्गुरु में ईश्वरी ज्ञान की धारा सदैव प्रवाहित होती रहती है और वह सद्गुरु जगत् में ब्रह्म का दूसरा स्वरूप व्यक्तरूप में पाया जाता है। दोनों सत्ता सद्गुरु और ब्रह्म अलग-अलग हैं, किन्तु गुणों और आनन्द के प्रदाता एवं संशय, मोह की निवृत्ति करने से दोनों के स्वरूप में एकतानता होती है, अतएव सद्गुरु और ब्रह्म उपास्य भाव में एक हैं एवं सद्गुरु की प्राप्ति से ब्रह्म की प्राप्ति होती है, इसलिए सद्गुरु के पद की अध्यात्म में प्रथम प्रधानता है।

प्रश्न- अद्वैतवाद के बारे में आप की राय क्या है?

उत्तर- ब्रह्म तो अद्वैत है ही। उसके समान दूसरा कोई पदार्थ नहीं

Scanned with CamScanner

है। अपने से भिन्न की उपासना होती है। उपासक उपास्य से भिन्न होता है। जल के होने से नाव की तथा रोग के होने से औषधि की आवश्यकता होती है। अतएव प्रकृति के होने से ही बन्धन है एवं बन्धन में रहने वाला ही बन्धन से छूटने का प्रयत्न करता है। अतएव ब्रह्म, जीव, प्रकृति– ये तीनों पदार्थ हैं। योगाभ्यास के द्वारा तीनों का अलग-अलग अनुभव होता है। एक अद्वैत की कल्पना नवीन वेदान्तियों की है। वेद, उपनिषद् सद्ग्रन्थ ईश्वर, जीव एवं प्रकृति तीनों को अलग-अलग प्रमाणित करते हैं।

प्रश्न- कर्मयोग क्या है?

उत्तर- कर्म के साथ जो योग होता है वह कर्मयोग है। कर्म में जो कुशलता है वह योग है एवं व्यावहारिक जीवन में रहकर जो अपना आध्यात्मिक उत्थान हो, मानव-जीवन का लक्ष्य पूर्ण होता है वह कर्मयोग है। ऐसे भी इधर योगी हुए जो जीवन-पर्यन्त एक ही आश्रम में रह गये, जैसे जनक, अर्जुन आदि। राजाओं में इस प्रकार की प्रणाली चलती रही है। पूर्ण ज्ञान हो जाने पर भी व्यावहारिक जीवन में ही रहे और अन्तिम समय तक किसी आश्रम को ग्रहण नहीं किया। कर्मयोगी गृहस्थाश्रम में रहकर आध्यात्मिक जीवन-निर्माण करता है। यह सन्तवाणियों में भी पाया जाता है।

प्रश्न- वैदिक काल में ब्रह्मविद्या के आचार्य, ऋषि कौन थे?

उत्तर- सृष्टि-प्रारम्भ काल से ही ईश्वर का तत्त्वज्ञान वेदमन्त्रों में पाया जाता है। वैदिक आध्यात्मिक मन्त्रों के जितने भी द्रष्टा ऋषि हैं, वे सब ब्रह्मविद्या योगमार्ग के अनुयायी अपने काल के आचार्य हैं। भृगु, उन्मोचन, वेन, नारायण, विश्वामित्र, श्यावाश्व, मेधातिथि, कुत्स, अथर्वा और स्त्रियों में लोपामुद्रा आदि ऋषि

Scanned with CamScanner

हैं। ब्रह्मविद्या के समस्त विषयों के ज्ञाता और सर्वद्रष्टा मनस्वी हैं। इनके मन्त्र वेदों में पाये जाते हैं।

प्रश्न- मानव-जीवन का लक्ष्य पूर्ण कैसे होगा?

उत्तर- सद्गुरु के ज्ञान-प्रकाश में रहकर उनके बतलाये हुए साधन, योगाभ्यास द्वारा जब अपना आध्यात्मिक उत्थान एवं ब्रह्मानन्द की प्राप्ति होगी, तब जीवन परिपूर्ण और अपने सारे लक्ष्यों की प्राप्ति होगी। आध्यात्मिक प्रकाश में जीवन की सारी शक्तियों का उत्थान होता है एवं पूर्ण मनुष्य बनने का जो साधन है वह अध्यात्म में है, अतएव आप आचार्य के उपदेशानुकूल अपने जीवन को अध्यात्म क्षेत्र में आगे बढ़ावें और प्रभु की उपासना करें।

प्रश्न- जड़योग और चेतनयोग में क्या अन्तर है?

उत्तर- प्रकृति की बनी हुई इन्द्रियों द्वारा जो साधन होता है वह सभी जड़ प्रकृति का योग है। आत्मा का उत्थान अपनी चेतन शक्ति के सहज योग द्वारा होता है। जड़ करण से चेतन आत्मा चेतन की भक्ति, ब्रह्म की प्राप्ति नहीं कर सकता। चेतन योग में शुद्ध आत्मा के द्वारा साधन होता है और जड़ में प्रकृति के कारणों द्वारा, यही दोनों योग में अन्तर है।

प्रश्न- सद्गुरु का दर्शन होना चाहिए, वे क्यों चले गये?

उत्तर- जिनको सद्गुरु का साधन और उनके अस्तित्व पर विश्वास है। उसको सदैव दर्शन होता है। गुरु का मरण नहीं होता, क्योंकि जब गुरु ही न रहेगा, तब अध्यात्म क्षेत्र को प्रकाश कहाँ से मिलेगा? अतएव सद्गुरु के प्रति पूर्ण विश्वास और श्रद्धा होनी चाहिए। जीवन्मुक्त आत्मायें संसार के कल्याण के लिए प्रकट होती हैं, तब उनका व्यक्त दर्शन होता है। श्री

Scanned with CamScanner

सद्गुरुदेव का भी दर्शन होगा। वे कहीं गये नहीं, केवल शरीर का परिवर्तन हुआ। ब्रह्मविद्या-प्रचार का प्रोग्राम पूरा कर वे जायेंगे। जीवन्मुक्त पुरुषों का दिव्य जन्म होता है, वे कर्मवश संसार में प्रकट नहीं होते।

प्रश्न- जब सद्गुरु का दर्शन होगा, तब गुरु के प्रति विश्वास होगा?

उत्तर- सद्गुरु का दर्शन तो होता ही है और शरीर में भी दर्शन होगा। उनके दिव्य जीवन में आध्यात्मिक रहस्य है, जिसका निकट भविष्य में स्पष्टीकरण होगा। आपका प्रश्न ऐसा है जैसे कोई कहे कि ईश्वर जब प्रकट दर्शन मुझे देगा, तब हम उसकी भक्ति करेंगे। आपको अपने विवेक से काम लेना चाहिए। आप अपनी आवश्यकता से भक्ति करते हैं, ईश्वर की आवश्यकता से नहीं। जैसा जो पदार्थ है, उसको उसी रूप में जानना ज्ञान है। अविवेक, हठ, दुराग्रह से कार्य नहीं होता। सत्संग, विवेक द्वारा सब विषयों का ज्ञान होता है। अपने मनमानी, विचारशून्य, सिद्धान्तरहित ज्ञान से नहीं।

प्रश्न- अब सद्गुरु का ज्ञान कैसे प्राप्त होगा?

उत्तर- ज्ञान नित्य है। उसके स्वरूप की प्राप्ति सद्गुरु द्वारा होती है। ज्ञान की धारा कभी बन्द नहीं होती। सद्गुरु की ज्ञानधारा परम्पराबद्ध संसार में चलती है। सृष्टि के आदि से अबतक जितने ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु हुए, उनके मन्त्र, ऋचायें वेदों में मिलती हैं। इस प्रकार प्राचीनकाल से आज तक संसार में ईश्वरी ज्ञान प्रकट होता आया है। ईश्वर नित्य है, उसका ज्ञान नित्य है। अतएव ईश्वरी ज्ञान सद्गुरु का समय-समय से संसार में लोप हो जाता है तो कोई विशेष शक्ति द्वारा फिर से उसका जागरण होता है। अतएव जिन आत्माओं में ईश्वरी ज्ञान आता है वे सभी सद्गुरु हैं। ब्रह्मविद्या की प्रवाह, धारा सदैव चली है। उपनिषदों में ब्रह्मविद्या के ऋषियों का वंश-वर्णन

Scanned with CamScanner

है। क्रमबद्ध ब्रह्मविद्या का ज्ञान-प्रवाह चला करता है। श्री सद्गुरुदेवरचित स्वर्वेद के सिद्धान्त से ब्रह्मविद्या की ज्ञानधारा चार गुरुओं द्वारा जगत् में प्रवाहित रहती है। स्वयंसिद्ध तथा अभ्याससिद्ध के बाद परम्परागुरु होते हैं, जिनके द्वारा अध्यात्मज्ञान संसार में प्रचारित होता है। अतएव सद्गुरु की ज्ञानधारा जिस आत्मा में आती है, उसके द्वारा संसार में ज्ञान प्रकट होता है और वही ज्ञानदाता सत्पुरुष संसार की अज्ञान-निशा दूर करता है। अतएव ज्ञान नित्य होने से सद्गुरु का पद नित्य है, क्योंकि सद्गुरु द्वारा ही ज्ञान प्रकट होता है। अतएव आप सत्संग द्वारा सद्गुरु के समस्त सिद्धान्तों का बोध करें। संशय से जीवन नष्ट होता है और मोह-आवरण से ग्रसित जीवन सदैव कष्ट, परिताप से पीड़ित रहता है। अतएव सद्गुरु-दर्शन, सत्संग, साधन द्वारा सत्य सिद्धान्त का बोध प्राप्त करें।

प्रश्न- गुरु किसी एक ही वर्ण में होते हैं?

उत्तर- वर्णाश्रम सामाजिक व्यवस्था है। वर्ण बनने को कहते हैं। एक कर्म, गुण, स्वभाव के अनुसार वर्णों की व्यवस्था की गई है। विद्या-दान तथा धार्मिक शिक्षा-उपदेश से ब्राह्मणों को गुरु कहा गया है, परन्तु आध्यात्मिक सदुपदेश शिक्षा में ब्रह्मनिष्ठ गुरु चारो वर्णों को आध्यात्मिक उपदेश करता है। शरीर के सम्बन्ध से सामाजिक उत्थान के लिए वर्ण-व्यवस्था है। क्षत्रिय नृप प्रवहन के यहाँ गोतम ब्राह्मण वर्ण का होकर ब्रह्मविद्या का उपदेश ग्रहण किया है। अजातशत्रु, अश्वपति क्षत्रिय राजा होते हुए ऋषियों को ब्रह्मज्ञान का उपदेश किये हैं। जनक को महर्षि याज्ञवल्क्य ने ब्रह्मज्ञान का उपदेश किया है। उक्त सब कलायें उपनिषदों में आयी हैं। उपदेश के लिए आश्रम और वर्ण का बन्धन नहीं हो सकता। इतिहास में जनक के यहाँ शुकदेव ने आत्मज्ञान ग्रहण किया है। आश्रम और

वर्ण एवं धर्म की शिक्षा ऋषियों को सृष्टि-प्रारम्भ काल में राजर्षि मनु ने दिया है। जो मनु स्मृति के रूप में आज भी पाया जाता है। राम और कृष्ण क्षत्रिय राजा होते हुए संसार में भगवान् के स्वरूप से पूजित हुए हैं। अतएव वर्ण-व्यवस्था के होते हुए भी तत्त्वज्ञान की दृष्टि से आध्यात्मिक तत्त्वज्ञान की शिक्षा सबको आचार्य करता है। अध्यात्म का उपदेश चारों वर्ण, चारों आश्रम के लिए है। आत्मा न गृहस्थ है, न विरक्त है, न ब्राह्मण है, न सूद्र है। अतएव जिन आत्माओं में ईश्वरी ज्ञान आया है, वही आत्मायें संसार-कल्याण के लिए उपयुक्त होती हैं और संसार उससे अध्यात्म-तत्त्वज्ञान की शिक्षा ग्रहण करता है। सद्गुरु किसी देश, वर्ण में नहीं होते, बल्कि सबके गुरु, भूमण्डल के आचार्य होते हैं।

प्रश्न- ***योगी विद्वान् होता है या नहीं?***

उत्तर- योगी ही विद्वान् होता है, अन्य नहीं। जिनकी आत्मा में किसी प्रकार का मोह-आवरण नहीं है, वही तो यथार्थ वस्तु को जानने वाला है। जितने भी वेद, दर्शन या सूत्र हैं, सभी ऋषियों के बनाये हैं। क्या वे योगी नहीं हैं? महर्षि पतञ्जलि जो योग के आचार्य हैं, उन्होंने पाणिनिव्याकरण पर अपना भाष्य किया है और आयुर्वेद का जो महान् ग्रन्थ चरक है उसका निर्माण किया है। क्या महर्षि पतञ्जलि विद्वान् नहीं हैं? वात्स्यायन ऋषि का कामसूत्र, वे विद्वान् नहीं हैं? सङ्गीत पर नारद आदि संहिताएँ हैं। महर्षि यास्क का निघण्टु है एवं मनु की बनाई हुई स्मृति है, क्या वे ऋषिगण विद्वान् नहीं थे? इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि योगी ही विद्वान् होता है। योगी ही वक्ता, दार्शनिक, आनुभविक, रहस्यवादी है। वेदों में मन्त्र, ऋचायें हैं। जो गूढ़ से गूढ़ विषयों का वर्णन करती हैं। वे सब ज्ञान मन्त्रद्रष्टा ऋषियों के हैं। कोरे

पुस्तकीय विद्वानों के नहीं। आजकल के विद्वान् जिसे आप विद्वान् कहते हैं, ये तो पठित एवं वाचनिक, पुस्तकीय पण्डित हैं। इनको अध्यात्म के तत्त्वज्ञान-सम्बन्धी विषयों का बोध कहाँ? पुस्तकीय विद्वान् सुनी-सुनाई बातों को कहता है। यदि उनका क्रियात्मक जीवन शुद्ध तथा परिपक्व है तो वह ब्रह्मविद्या के विषयों को जानने का इच्छुक हो जाता है। अतएव योगी ही विद्वान् होता है एवं उसी की देखी हुई एवं बनाई हुई रचना को पढ़कर संसार के पुस्तकीय विद्वान् अपने को पण्डित या शिक्षित समझते हैं। अतएव यह निर्भ्रान्त सिद्धान्त है कि योगी ही विद्वान् होता है। भौतिक या आध्यात्मिक सभी विषयों का ज्ञान क्रियाशील, उच्चकोटि के तत्त्वदर्शी, मेधावी में ही होता है। इसलिए विद्वान् होने के लिए आचार्य ब्रह्मनिष्ठ गुरु की खोज करें और मानव-जीवन की उच्चकोटि की सफलता को प्राप्त करें, क्योंकि प्रकाश के आवरण को मिटाने के लिए योगाचार्य महर्षि पतंजलि ने योगाभ्यास बतलाया है। अतएव योगी को ही पूर्णज्ञान होता है और वही सच्चे अर्थ में पूर्णरूप से तत्त्वों का निर्भ्रान्त स्पष्टीकरण करने वाला सबका गुरु होता है। तथ्य और तत्त्व को पूर्णरूप से जानने वाला योगी होता है। बाहरी पुस्तकीय, वाचनिक विद्वान् नहीं।

प्रश्न- जगत् कब उत्पन्न होता है और प्रलय कैसे होता है?

उत्तर- ब्रह्म की सन्निधि से परमाणुओं में क्रिया होने लगती है। एक परमाणु दूसरे परमाणु से मिलने लगते हैं अर्थात् परमाणुओं के संयोग से आकाश-महामण्डल प्रकट होता है। इसी प्रकार आकाश, वायु आदि पंचतत्त्वों की रचना से ये निर्जीव, स्थावर जगत् बन जाता है। फिर अयोनिज सृष्टि का प्रादुर्भाव होता है। यही सृष्टि-प्रारम्भ की स्थिति है। जिस प्रकार सृष्टि की रचना होती है, उसी प्रकार क्रमशः विलोमगति से परमाणुओं

Scanned with CamScanner

में व्यतिक्रम होने लगता है और आकाश, पृथ्वी जल में, जल अग्नि में, फिर वायुतत्त्व आकाश एवं परमाणु-महामण्डल में सन्निविष्ट हो जाता है, इसी को प्रलय कहते हैं। प्रलय में परमाणु गतिरहित होकर शान्त हो जाते हैं। यही प्रलय का स्वरूप है। जब परमाणुओं में गति होने लगती है, तब सृष्टि का आरम्भ होता है। लगभग दो अरब वर्ष सृष्टि को बने हुआ। सृष्टि-रचना का विज्ञान विस्तृत है। ब्रह्म के आधार पर ही परमाणुओं के संयोग से सृष्टि का निर्माण होता है।

प्रश्न- प्रलय में अनेक जीव कहाँ और कैसे रहते हैं?

उत्तर- सृष्टि, मुक्ति, प्रलय, आवागमन किसी भी अवस्था में जीव, ब्रह्म के आधार पर ही स्थित रहते हैं। वेदों में ईश्वर को 'मातरिश्वा' कहा गया है। प्रलयकाल में सर्वजीव एकपाद सृष्टि के अन्दर अपने कर्म-भोग प्रारब्ध को लेकर परमाणु-मण्डल के अन्तर्गत ब्रह्म के आधार पर अवलम्बित हैं। फिर जब सृष्टि होती है, तब वैसे ही पूर्व कर्म, गुण, भोग, वासना के अनुसार अयोनिज सृष्टि क्रम से संसार में प्रकट होती हैं। रात्रि हो जाने पर जैसे मनुष्य अपने विचार, काम-व्यवहार को बन्द कर सो जाते हैं। फिर प्रातःकाल के सूर्य उदय होने पर अपनी पूर्व व्यवस्था के अनुसार अपने कार्य करने में लग जाते हैं, उसी प्रकार सृष्टि-प्रारम्भ में सर्वजीव अपने पूर्व कर्मानुसार जगत् में प्रकट होकर कर्मभोग-क्षेत्र में पदार्पण करते हैं। स्थावर, जंगम विशाल जगत् ब्रह्म के आधार पर ही प्रकट होता है और उसी के आधार पर अवलम्बित रहता है, फिर उसी के आधार पर प्रलय में स्थित रहता है। ईश्वर सर्वाधार है। प्रत्येक अवस्थाओं में जीव का ब्रह्म से सम्बन्ध रहता है। बद्ध अवस्था में अज्ञान-मोह-बन्धन से प्रकृति के चक्र में पड़कर नाना दुःख-विपदाओं को प्राप्त होता है और मुक्त हो

Scanned with CamScanner

जाने पर तीन पाद अमृत में आकर परमानन्द में निमग्न हो अव्याहत मनभावनी मुक्ति में विराजमान रहता है।

प्रश्न- सूर्य-संयम किसको कहते हैं?

उत्तर- उपनिषदों में अधिभूत, अधिदैव, अध्यात्म उपासनाओं का विधान है। ईश्वर अनन्त होने से उसके कर्म, गुण, स्वभाव भी अनन्त हैं। ईश्वर की उपासना से ही जीवन में प्रत्येक तरह की शक्तियों का उपार्जन होता है। सूर्य प्रकृति के अन्दर एक महान् शक्ति है। सूर्य द्वारा अन्तर-योगाभ्यास से तेज, बल, प्रताप का संचय होता है। यह योगविद्या है। इसका ज्ञान अध्यात्मविद्या के ज्ञाता परम महर्षि द्वारा हो सकता है। भौतिक विज्ञान में बाह्य सूर्य-संयम द्वारा अनेक रोग, कष्टों की निवृत्ति हो सकती है। चर्मरोग इससे दूर होते हैं। विजय शक्ति का संग्रह सूर्य के किरणों के प्रयोग द्वारा हो सकता है। अग्नि और सूर्य की उपासना वैदिक है। इसकी उपासना विज्ञानयुक्त और साधनयुक्त हो, तब सूर्य-संयम का प्रभाव जीवन पर पूरा पड़ता है। सारे अंग-प्रत्यंगों पर सूर्य की शक्ति उतारी जा सकती है। प्राकृतिक विज्ञान और अन्तर के दिव्य प्रयोग से सूर्य का तेज, प्रताप जीवन में अवतीर्ण होता है। अतएव सूर्य-संयम महान् विज्ञान है। अतएव काल के भेद से प्रत्येक व्यक्ति प्रत्येक साधन को नहीं कर सकता है। सूर्य की किरणों से जल में शक्ति रहती है। सूर्य से मानसिक शक्ति का उद्धार होता है। जीवन में उन्नति के अनेक दृष्टिकोण हैं। तेज, बल, प्रताप के लिए सूर्य का संयम है। ईश्वर-प्राप्ति के लिए नहीं।

अतएव तत्त्वज्ञानपूर्वक विषय विधेय का ज्ञान प्राप्तकर किसी प्रकार का साधन करना चाहिए। सब साधन गुरु के द्वारा जानकर करना चाहिए। पुस्तक देखकर कोई साधन नहीं होता,

Scanned with CamScanner

बल्कि गुरुविहीन होने से हानि हो जाने की सम्भावना हो जाती है। याद रखें पुस्तक गुरु नहीं होती, बल्कि उसका उपदेष्टा आचार्य गुरु होता है। गुरु द्वारा सत्सङ्ग, विवेक से प्रत्येक पदार्थों का ज्ञान होता है। अतएव विवेक से सूर्य-संयम का प्रयोग या साधन करें, मनमानी, स्वतन्त्र नहीं।

प्रश्न- पूर्णज्ञान कब होता है?

उत्तर- बड़ा-से-बड़ा विद्वान् क्यों न हो, जब तक ब्रह्मविद्या योगाभ्यास द्वारा अन्तर का भेद-रहस्य नहीं विदित होगा, तब तक बाह्य ज्ञान से निर्भ्रान्त ज्ञान नहीं हो सकता। निर्भ्रान्त ज्ञान योगी को ही होता है। बुद्धिमूलक ज्ञान निरापद नहीं हो सकता। सद्गुरुविहीन कोई भी हो उसे सत्यज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती।

द्वैताद्वैत, विशिष्टाद्वैत आदि वाद बुद्धिवाद का विस्तार करता है। पूर्णज्ञान का दाता नहीं। जीव-कल्पित सिद्धान्त कभी निरापद नहीं हो सकते। अतएव साधन, योगाभ्यास द्वारा ब्रह्म का साक्षात्कार करें। अनुभवहीन साधन व्यर्थ है। अनुभव प्राप्त करने पर ही आत्मा में सत्य की प्राप्ति होती है।

पूर्ण विद्वान् वही है, जो अनुभव-सिद्धान्त द्वारा सत्यासत्य का विवेक किया है। कोई ख्यातिप्राप्त और प्रतिष्ठित हो जाने से यथार्थ वस्तु को जानने वाला नहीं हो सकता।

प्रश्न- वेद का कौन भाग अपौरुषेय है और जो भाग ईश्वररचित नहीं है उसका कर्त्ता कौन है?

उत्तर- वेद तो मंत्र भाग ही है। चारों वेदों के द्रष्टा ऋषि ही हैं। ईश्वरीय ज्ञान संसार में ऋषियों के द्वारा ही प्रकट होते हैं। ऋषिजन ही ईश्वरीय ज्ञान को संसार में प्रकट करते हैं। ज्ञान आने की अनेक भूमियाँ हैं, सर्वोच्च भूमि पर ही

Scanned with CamScanner

ईश्वरीय ज्ञान प्रकट होता है। वह ज्ञान तो अपौरुषेय है।' तत्र निरतिशयं सर्वज्ञ बीजम्' से वह ईश्वर समस्त ज्ञानों का कारण है, तब वेद ऐसे सद्ग्रन्थ का दूसरा योनि या कारण कौन हो सकता है? जीवत्व शक्ति में बिना ब्रह्म की प्राप्ति के पूर्ण ज्ञान नहीं होता। निर्भ्रान्त ज्ञान का आधार ईश्वरीय ज्ञान है। वेद प्रकट होने की भूमि प्रकृति-मंडल से परे है। इसलिए वेद को अपौरुषेय कहते हैं। ईश्वर ज्ञानदाता है। उस ज्ञान को ऋषिजन जगत् में प्रकट करते हैं। ईश्वररचित कोई ग्रंथ नहीं होता। ईश्वरीय ज्ञान को जगत् में प्रकट करने वाले ऋषि हैं। *ऋषयोमन्त्रद्रष्टारः।* मंत्र के दर्शन करने वाले ऋषि हैं।

वेद के अतिरिक्त ब्राह्मण ग्रंथ या अनेक शाखायें हैं। उपनिषदें भी वेदों से ही निकली हैं। परन्तु चारों वेद मन्त्ररूप से हैं। व्याख्या या शाखायें वेद के अतिरिक्त हैं। सब शाखायें, उपनिषदें आदि ऋषियों द्वारा रचित हैं।

प्रश्न- उपनिषदों के 'तत्त्वमसि' 'अहं ब्रह्मास्मि' आदि महावाक्यों के क्या भाव हैं?

उत्तर- जिज्ञासु के ताईं आचार्य का अनुभव प्रत्यक्ष सिद्ध उपदेश है कि वह तू है, जब गुरुगम्य साधन भेदों के द्वारा अनन्य शरण अधिकारी अध्यात्मविद्या के द्वारा अन्तरतर को अपनी दिव्य-दृष्टि के प्रभाव से प्रकृति का आवरण हटाकर उसे निर्देश करता है,. स्पष्ट दिखाता है कि वह तू है। *'आत्मा वारे द्रष्टव्यः'* जो उपनिषद् की उक्ति है। इसका यही अभिप्राय है। सन्तवाणी में *सद्गुरु सोई कहावै, जो पलक में अलख लखावै।* अलख लखावै को ही उपनिषद् में 'वह तू है' इस गुरुवाक्य से सम्बोधित किया गया है। वह तू है, इसका

अर्थ नवीन वेदान्ती जीव-ब्रह्म की एकता सिद्ध करने के लिए उपयोग करते हैं।

जीव कभी ब्रह्म नहीं होता, परन्तु ब्रह्म की उपासना करने से ब्रह्म की समीपता जीव को प्राप्त होती है। अग्नि में धौंका हुआ लोहा अग्निस्वरूप हो जाता है, उसी प्रकार *'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति'*, ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म हो जाता है। ध्येय के गुण ध्याता में आ जाते हैं। ब्रह्म और जीव दोनों चेतन, सजातीय होने से इन्हें वेदों में सखा कहा गया है। दो पदार्थों में मैत्री और विलय का भाव होता है। इसी आधार पर चेतन की तन्मयता में जब सर्वत्र आनन्द ही आनन्द दृष्टिगोचर होता है एवं *'एकत्वमनुपश्यतः'* यह वेद-उक्ति जब चरितार्थ होने लगती है, तब अपने से भिन्न दोनों सत्ता की एकतानता दृष्टिगोचर होती है। उस भावोद्रेक में जीव अपनी समीपता और आनन्द-सन्तुष्टता के प्रचुर भावोद्रेक में एक ब्रह्म की कल्पना करता है।

वास्तव में ब्रह्म, जीव दोनों दो वस्तु हैं। जब दो सत्ता और दोनों अनादि एवं अलग-अलग वस्तु हैं, तब एक कैसे हो सकते हैं? भोक्ता भोग्य से सदैव पृथक् रहता है। जड़ परिणामी पदार्थ भी कारण-कार्य, अंश-अंशी रूप से मिलते हैं, परन्तु चेतन, कूटस्थ और ज्ञानवान् पदार्थ कभी भी किसी में नहीं मिलते, न उनमें परिणाम, विकार होता है। अतएव जीव-सत्ता को न मानकर एक अहं की भावना वैदिक सिद्धान्त से अलग विरुद्ध है। जीव, ब्रह्म दोनों सत्ता अलग-अलग हैं। उपास्य-उपासक सदैव दोनों दो पदार्थ हैं। अतएव जीवत्व सत्ता बोध के पश्चात् ही ब्रह्मप्राप्ति का सिद्धान्त निरूपण होता है। भक्त प्रभु की उपासना करता है। भक्त से भगवान् श्रेष्ठ तथा पूज्य है। अपने को ब्रह्म मानना भ्रम, घोर अन्धकार है--

Scanned with CamScanner

ज्ञानी भूल गवाईया आप भय कर्त्ता।
ताते संसारी भला जो सदा रहे डरता।।

प्रश्न- साधक को क्या आहार करना चाहिए?

उत्तर- भोजन का ही मन और बुद्धि दोनों पर प्रभाव पड़ता है। अन्न का सम्बन्ध मन से है। शुद्ध, सात्त्विक भोजन साधन के लिए अनुकूल पड़ता है। जिस प्रकार का जिसका जीवन है, उसको उसी प्रकार का भोजन मिलना चाहिए। ब्रह्मचारी, गृहस्थी, संन्यासी, योगी और बालक के भोजन में अन्तर है। अतएव साधक को जिसका मन किसी विशेष केन्द्र पर स्थित हो रहा है, उसको उसी के अनुसार भोजन करना चाहिए। वात, पित्त, कफ के अनुसार अलग-अलग मनुष्य के शरीर की रचना है। व्याधि और आधि दोनों से रहित जो साधक है वह सात्त्विक, शुद्ध, सतोगुणी भोजन करके अपने शरीर, मन, प्राण को बलिष्ठ बनाता है। साधक के प्रारम्भिक स्थिति का भोजन और योगाभ्यास के अन्दर प्रवेश-प्राप्ति के समय के भोजन और नियम में भी अन्तर है। गृहस्थाश्रमी, पारिवारिक जीवन में रहने वाला साधक और त्यागी, ब्रह्मचारी साधक के भोजन में अन्तर है। एक कोटि के साधक नहीं हैं और न सबकी एक भूमि है, फिर भी सात्त्विक भोजन सबको अनुकूल पड़ता है। सामान्य और विशेष साधन करने वाले एवं सद्गुरु-आदेश में गुहा-अनुष्ठान करने वाले-- इन दोनों साधकों के भोजन एक प्रकार के नहीं हैं। विशेष अभ्यास करने वाले साधक जिनकी अन्तर्वृत्ति गुरु-प्रदेश में शीघ्र स्थित हो जाती है, उनको गुरु-समीप एकान्त में रहकर भोजन-शयन आदि के पूर्ण नियम के पालन करके ही अभ्यास करना चाहिए। जिसका दृढ़ वैराग्य, दृढ़ ज्ञान, किसी प्रकार का आचार्य के पद और ज्ञान पर संशय नहीं है वही गुरुभक्त, साधक, शिष्य अपने लक्ष्य को पूर्ण

Scanned with CamScanner

करता है। यही भजन है। साधन की सिद्धि में जब अपने में अन्तर अनुभव की सरसता आने लगती है, तब भजन होता है। बार-बार एक ही क्रिया के करने को साधन कहते हैं। उसी को अभ्यास भी कहा गया है, परन्तु भजन तो पूर्ण वैराग्य और पूर्णज्ञान, निस्पृह, निर्द्वन्द्व, निष्काम होकर होता है। पूर्व जन्म के संस्कारी सद्गुरु अनन्य शरण भक्त ही इस महायुद्ध में विजय प्राप्त करता है।

अतएव साधकों की कई कोटियाँ हैं, उनको गुरु द्वारा जानकर नियम-उपनियम के सारे भेदों को जानकर योगाभ्यास में प्रवृत्त होना चाहिए। प्रकृति के अनुसार ही भोजन श्रेयस्कर होगा। साधन में योग की ९ विघ्नें बतलायी गयी हैं, वे नहीं होनी चाहिए। महर्षि पतंजलि व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्ति दर्शन, अलब्धभूमिकत्व, अनवस्थितत्त्व यही चित्त के विक्षेप अर्थात् विघ्नें बतलाये हैं।

अल्पाहार साधक के लिए उत्तम है। गौ का धारोष्ण दूध बुद्धि, बल को बढ़ाता है और जीवनशक्ति भी देता है। मूँग की दाल, चोकरयुक्त रोटी, लौकी, परवल, रामतरोई हल्का भोजन है। आटे में चोकर का रहना जरूरी है। चोकर सुपाच्य है और आमाशय में शीघ्र पच जाता है। मूँग की दाल गाढ़ी होनी चाहिए। गाढ़ी दाल शीघ्र पचती है। प्रमाण से ही भोजन हो, कामोवेश न हो। शाम को दूध और फल पर रहा जाय तो रात्रि में साधन में अत्यन्त आनन्द मिलता है। फल भी सरस, सुस्वादु हो। गरिष्ठ और वासी फल शीघ्रता से नहीं पचता है। गुड़, चीनी, अदरख, जीरा, खट्टा और अधिक मीठा, नमकीन भोजन उत्तेजक और गरिष्ठ होता है। साधक को तरातर हलुआ, गर्म दूध कभी नहीं पीना चाहिए।

Scanned with CamScanner

धारोष्ण गौ का दूध अच्छा है, जो गाय रोग अथवा किसी अन्य व्याधि से रहित हो। दूध गर्म कर सकते हैं, परन्तु दूध को आग पर रखकर औंटाना नहीं चाहिए। मैं तो धारोष्ण दूध पीने को अच्छा समझता हूँ। सूर्योदय के दूध से सूर्यास्त वेला का दूध शीघ्र पचने वाला होता है। गायें दिन में चरकर घूम-फिरकर आती हैं। बैठकर खिलाने वाली गौ से जो गौ घूम-फिरकर चारा चूगती हैं, उनका दूध अधिक लाभप्रद होता है। अतएव जो साधक अधिक साधन में रत हैं, उन्हें शाम को दूध और सन्तरा खाकर आहार पूरा कर लेना चाहिए। कोई नियम धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए। जितनी ही जीवन में पवित्रता होगी उतने ही साधन में आगे चलने के लिए सहायता मिलेगी। सभी नियमों का पालन सब नहीं कर सकते, क्योंकि सबको सर्व प्रकार की सुविधा प्राप्त नहीं है। मनमानी देखा-देखी, सुनी-सुनाई बातों के आधार पर किसी नियम, साधन को कभी प्रारम्भ नहीं करना चाहिए, नहीं तो अत्यन्त हानि होने की संभावना पायी गयी है। दूध, घी, मूँग, साठी, ब्राह्मी, नीम की पत्ती अनुत्तेजक सभी पदार्थों का ज्ञानपूर्वक उपयोग कर सकते हैं। स्वामी जी ने चना का वर्णन स्वर्वेद में किया है, किन्तु यह शुष्क और निस्तेज करने वाली वस्तु है। इसका उपयोग ब्रह्मचारी साधक कर सकते हैं। गृहस्थाश्रमी साधक इसका उपयोग नहीं करते। मादक फलों में जैसे आम, कटहल का उपयोग साधन-अवस्था में नहीं होना चाहिए।

विशेष साधक की शरीर-शुद्धि हो जानी चाहिए, नहीं तो शरीर में वात, पित्त, कफ के दोषों के रहते प्रकृति के अनुकूल न होने से मानसिक और बौद्धिक ह्रास होने की अत्यन्त संभावना रहती है।

बलपूर्वक कभी साधन नहीं करना चाहिए। प्रसन्नता और हर्ष

के साथ सद्गुरु के चरणों में नमस्कार कर योगाभ्यास को प्रारम्भ करना चाहिए। एकान्त स्थान, शुद्ध जलवायु, नदी का तट साधन के लिए उत्तम होता है। पहाड़ी कन्दरा में जहाँ हरेक प्रकार की जड़ी-बूटियाँ प्राप्त हों, शीतल झरना हो, सद्गुरु का दर्शन हो, ऐसी पहाड़ी गुहाओं में कोई वीतरागी हो साधक निवास करता है।

गृहस्थाश्रमी तथा विरक्त साधकों में अन्तर है। परन्तु गृहस्थाश्रमी भी विशेष साधन में अपने को लगाने की अभिरुचि रखता है। वह एकान्त में सद्गुरु-नियम-आदेश के अनुकूल अनुष्ठान, भजन कर सकता है। इन्द्रियनिग्रह, ब्रह्मचर्य दोनों की अत्यन्त आवश्यकता है। हिलते हुए जल में निज प्रतिबिम्ब को नहीं देख सकते। इस प्रकार इन्द्रियों के बाह्य विषय-प्रवाह में आत्मा का ज्ञान चंचल हो जाता है। गृहस्थाश्रमी नैमित्तिक सांसारिक सम्बन्ध को पूरा कर अपने साधन-अभ्यास को क्रमशः बढ़ा सकता है। अपने को धीरे-धीरे आगे बढ़ाना चाहिए, फिर पीछे की वस्तुएँ आपे-आप छूटती जायेंगी। एकबारगी किसी आसक्ति को छोड़कर उससे अलग नहीं हो सकते। अतएव ज्ञानपूर्वक सन्तानोत्पत्ति धर्म का पालन होता है। विषय, प्रमाद, आलस्य, संशय, दूराभिमान– ये साधन को आगे बढ़ने नहीं देते। सब कार्य का नियम होना चाहिए। अनियमित कार्य सदैव नीचे गिराता है। बाहरी बनावट, आडम्बर को पाखण्ड कहते हैं। साधन अपने कल्याण, आत्मोद्धार के लिए होता है, बाहरी संसारी किसी कामना के लिए नहीं। कामनायुक्त प्रेम पतन का कारण होता है। साधक को दूसरों को न देखना चाहिए। अपने दुर्गुण पर प्रतिदिन ध्यान रखना चाहिए, जिससे आत्मपरीक्षा होती रहे। पुस्तक-स्वाध्याय धर्म है, परन्तु आजकल पुस्तकों का इतना जाल बढ़ गया है कि और लिखने

वाले इतने हो गये हैं कि उनका स्वाध्याय कर साधकजन अधंकार, मोह, भ्रम में पड़ जाते हैं। आप्त वाक्य संसार के लिए प्रमाण है। किसी पुस्तकीय विद्वान् और अनार्ष के द्वारा सत्य सिद्धान्त का विचार-विमर्श नहीं होता है। आध्यात्मिक सद्ग्रंथों को पढ़ने वाले वैदिक आध्यात्मिक मंत्र, ऋचाओं से लाभ उठा सकते हैं।

उपनिषदें भी वैदिक ऋषिप्रणीत हैं। नीचे आकर छः दर्शन हैं, जिसके रचयिता ऋषि हैं। इसके अनुकूल जो ग्रंथ हैं सभी अध्ययन करने योग्य हैं, परन्तु इन सद्ग्रन्थों के विशेष अध्ययन, साधन से कोई विशेष लाभ प्राप्त न होगा।

आपको हिन्दी में स्वर्वेद तथा संतवाणियाँ हैं, जिनमें अध्यात्म के सारे रहस्य प्राप्त होते हैं। फिर भी नवीन सिद्धान्तियों ने उन मार्मिक पदों को तोड़-मरोड़कर उनके वास्तविक रहस्य को सम्पुट कर दिया है। संतवाणी में सद्गुरु कबीर साहेब की वाणियों में ही पूर्ण आभ्यन्तरिक भेद-साधन का रहस्य मिल सकेगा। अधिक स्वाध्याय जो तत्त्वज्ञान और सद्गुरु-भेद से रहित है, वितण्डावाद को बढ़ाता है। अतएव सद्गुरु द्वारा ही सत्संग एवं स्वाध्याय एक धर्म का अङ्ग माना गया है। साधकों को स्वाध्याय की विशेष आवश्यकता नहीं, वे भजन करें। अपने सन्देह को सद्गुरु द्वारा दूर कर निर्भ्रान्त हो अपने सत्यपथ पर स्थिर रहें।

साधक को ब्राह्ममुहूर्त्त में तीन बजे उठने का नियम है। इन नियमों का अपने स्वास्थ्य और सुस्थिरता को देखकर इनका पालन अवश्य करना चाहिए। अधिक गरिष्ठ भोजन करने वाले जिनका आमाशय भरा हुआ है वे रात्रि में नहीं उठ सकते। इसलिये रात्रि में हल्का भोजन करना चाहिए और सुबह उठने

के लिये १० बजे रात्रि में सो जाना चाहिए, शौच के लिये ताजा जल उषापान आवश्यक है। यकृत, गुर्दा, अँतड़ी ठीक से काम करें इस पर प्रत्येक साधक को ध्यान रखना चाहिए। हठात् प्राणायाम से एकबारगी इन्द्रियों का दमन नहीं होता। शारीरिक ब्रह्मचर्य से मानसिक संयम और सदाचार श्रेष्ठ है। अतएव बाहरी शुद्धि तो होगी ही, आन्तरिक पवित्रता पर विशेष ध्यान रखना चाहिए। साधन-अभ्यास का क्रम लगातार चलना चाहिए, नहीं तो धार पकड़ने में कठिनाई प्रतीत होगी। इस पर सद्गुरुदेव विशेष जोर देते थे। नित्य और नैमित्तिक दो प्रकार से साधन होते हैं। सामान्य साधन तो सदैव होना चाहिए। जब सामान्य साधन नित्य का होगा, तभी विशेष साधन में हम पूर्ण परिश्रम कर सफलीभूत हो सकते हैं। श्री सद्गुरुदेव चिरकाल तक गुहा-अनुष्ठान किये। छः वर्ष का अनुष्ठान होता है। प्रथम सद्गुरुदेव बाहर एकान्त वन तथा बाग, उपवन में साधन करते थे। छः घण्टे तक एक आसन पर बैठकर प्रथम कोटि का प्रारम्भिक साधन करते थे। फिर गुहा में आकर दृढ़ासीन हो चौबिसों घण्टों का अभ्यास करते थे। बिना अन्न और जल के दो-दो हफ्ते एक आसन से बैठकर यह अवस्था प्राप्त की थी। इस प्रकार १७ वर्ष की घोर साधन-तपस्या के पश्चात् ही प्रचार क्षेत्र में आये। उस वक्त कच्चा केला, गौ का दूध या कभी-कभी हल्का भोजन करते थे। उनकी प्रारम्भ में अवधूत वृत्ति थी, पीछे तो अपने आनन्द में गुहा में रहते थे। अभ्यास क्या? वे तो ब्रह्मानन्द में निमग्न थे। योगी पुरुषों की बात है, यह नियम साधारण साधकों में नहीं हो सकता। अतएव आचार्य द्वारा समस्त विषयों का बोध प्राप्त कर साधन-अभ्यास में आगे बढ़ना चाहिए। शरीर शुद्ध तथा ज्ञान-वैराग्यपूर्ण होने पर ईश्वर की असीम

Scanned with CamScanner

दयास्वरूप सद्गुरु की कृपा अवलोकन होने से पूर्णरूप से अभ्यास होता है। पूर्वाभ्यासी साधक शीघ्र अपने लक्ष्य को पूर्ण करता है। उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ और अधम-- ये चार प्रकार के साधक, भक्त होते हैं। कितने लोग दूसरे की स्थिति देखकर विकल हो जाते हैं। किसी का प्रारम्भ हो रहा है और कोई एक या दो जन्म पीछे से आ रहा है। सबका एक बराबर साधन नहीं चल सकता। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र अनेक जन्म संसिद्धिः कहा है अर्थात् अनेक जन्मों में तपस्या और पुरुषार्थ के पश्चात् ईश्वरप्राप्ति होती है।

उत्तमकोटि का साधक अल्पकाल में सद्गुरुदेव की क्षणमात्र कृपादृष्टि होने से ही एक विशेष स्थिति में आ जाता है। भारत में ऐसे अनेक स्त्री, पुरुष मेरे सामने आये और मैं प्रचार-भ्रमण में इसका पूर्णरूप से अनुभव किया है।

कितने साधारण जीवन में रहकर अल्पकाल में ही अन्तर की स्थिति को प्राप्त कर चुके हैं। जिस पद को चिरकाल में गुहा-अनुष्ठान करने वाले प्राप्त कर सकेंगे। ऐसे साधक पूर्व जन्म के संस्कारी विशेष सद्गुरु के दया के पात्र हैं। उनकी अपनी विशेषता उनको इस पद को प्राप्त कर दिया है। दया का पात्र बनना चाहिए। जो सबकुछ देता है वही सब कुछ प्राप्त करता है। सब कुछ देने पर जो अपने को नहीं दिया वह कुछ भी नहीं दिया। आत्मसमर्पण करने वाले भक्त की बड़ी महिमा गायी जाती है। निष्काम भक्त जो भगवदार्पण करके अपने को प्रभु में समर्पित कर देता है वह शीघ्र लक्ष्य को प्राप्त होता है। सकामी, संसारी मनोवृत्ति का साधक कभी भी कितना भी पुरुषार्थ करे सफलता नहीं पाता। पवित्रता मन और आत्मा की होनी चाहिए। अन्दर से पुरुषार्थ है, अन्दर से भक्ति और अन्दर से प्रेम है और वह शुद्ध एवं

Scanned with CamScanner

निष्काम हो। अतएव उत्तम साधक ही शीघ्र लक्ष्य को प्राप्त करता है।

धीर शिरोव्रत है जिज्ञासू।
अनहद नाद सदा तेही पासू।। -सद्गुरुदेव।।

प्रश्न- साधक को संगीत, वाद्य से प्रेम रखना चाहिए या नहीं?

उत्तर- संगीत का जीवन पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। वर्तमान समय का संगीत जो निम्न माप में बनायी जाती है, जिस प्रकार मनोभाव को विषैला बना रही है वह तो विष है। संगीत में यदि विचार है, मानवीय सौन्दर्य है, ओजस्विता और मार्मिकता है तो वह जीवन को उत्कृष्टता की ओर बढ़ायेगी। संगीत में चरित्र-निर्माण का होना आवश्यक है। चरित्रविहीन संगीत से आज का समाज कराह रहा है। अतएव समाज तथा व्यक्ति के उत्थान के लिये मनोभाव को बढ़ाने वाला संगीत होना चाहिए। चारों वेद संगीत है। सामवेद पूर्ण संगीत है। संतवाणी सभी संगीत में ही कही गई है। भर्तृहरि ने साहित्य, संगीत और कला से विहीन मनुष्य को सींग और पूँछ से हीन साक्षात् पशु बतलाया है।

अतएव आध्यात्मिक भाव से संगीत समय के अनुसार उपयोगी हो सकता है। साधनकाल में संगीत की आवश्यकता नहीं। सामान्य संगीत का व्यवहार सामान्य जीवन को कोई क्षति नहीं पहुँचा सकता। संगीत एक प्रकार का विषय-वन है। जो इस वन के अन्धकारपूर्ण जीवन में उन्मत्त की तरह दौड़ता रहा वह संगीत की उन्नति करके भी अपनी उन्नति से करोड़ों कोस दूर रहेगा। संगीत में अधिक पतन की सम्भावना देखी जाती है, उत्थान बहुत कम। अध्यात्म उत्थान रखने वालों को संगीत और वाद्य से सामान्य रुचि रखनी चाहिए, इसके

Scanned with CamScanner

प्रवाह में पड़ने से अन्स्वर का प्रवाह बन्द हो जायेगा। संगीत में अन्तर्वृत्ति बाहर आती है और संगीत के विषय-तरङ्ग में तरङ्गित जीवन वाह्यमुख हो अध्यात्म-उत्थान से रहित हो जायेगा। अतएव सामाजिक क्षेत्र में किसी भाव को पूर्णरूप से प्रदर्शित करने के लिये सङ्गीत का आधार लेना आवश्यक हो सकता है। साधारण जीवन पर सङ्गीत का बड़ा प्रभाव होता है। एक नीतिकार ने मूर्खों को अपने अधीन करने के लिये संगीत के व्यवहार करने का निर्देश किया है

किसी विषय के भाव को जागरित करने के लिये संगीत है। किसी जीवन पर संगीत का बड़ा प्रभाव पाया जाता है। परन्तु अपने व्यक्तिगत साधनकाल में संगीत की कोई आवश्यकता नहीं। साधक अपने अन्दर के तरङ्ग से तरंगित हो एक विशेष सुनने की इच्छा रखता है।

संगीत में जो स्वर है वह पूर्ण अभ्यासी को, जो शब्दों के भेद-प्रयत्न का ज्ञान रखता हो वह एक विशेष स्थान से जहाँ मस्तिष्क के तन्तुओं से सम्बन्ध है, गाने पर बाहरी जीवन में बड़ा प्रभाव पड़ता है। यह वाणी समाधिस्थ संतों की होती है। उच्च भूमि की शक्ति से सम्बन्ध लगाकर वाणी के मूल केन्द्र से लगकर जो वाणी बाहर प्रकट होती है वह सरसता प्रदान करती है। इसलिए श्री सद्गुरुदेव ने मुझे सोमरस से सनी हुई वाणी बोलने का उपदेश किया है। समयानुसार अधिकारी की चेतन शक्ति को जागरित करने के लिये इसका प्रयोग ब्रह्मविद्या के आचार्यगण करते हैं। इस वाणी में चुम्बन होता है और इस वाणी का मंडल है। उतने में रहने वाले श्रोताजन आध्यात्मिक भावना और एक विचार में निमग्न पाये जायेंगे। इस वाणी में प्रभाव और ओज रहता है। अब रही वाद्य की बात। बाजा का तो सब योगियों को अनुभव है। योनिज

सृष्टि के आदि योगी शंकर वाद्य को बजाते थे और ताण्डव नृत्य भी करते थे। वाद्य और संगीत के प्रभाव से विषैले जन्तु, हिंसक जानवर भी वशीभूत किये जा सकते हैं। ब्रह्माण्डी अनहद तो बाजा ही है, परन्तु इसे योगिजन ही सुनते हैं। सहनाई बाजा को श्री सद्गुरुदेव बहुत पसंद करते थे। इन सारे वाद्यों के आविष्कारक योगिजन हैं। फिर साधक के लिये बाहरी बाजा और संगीत से क्या सम्बन्ध है। यह व्यावहारिक तथा क्षणिक सुख एवं प्रभाव की वस्तु है। साधन करने वालों को इस विषय से दूर रहना चाहिए। परन्तु सामाजिक क्षेत्र में जागरण के लिये और मन को आध्यात्मिक भावना में उठाने के लिये सामयिक संगीत और वाद्य का उपयोग हो सकता है। साधक के लिये इसका कोई मौलिक विचार और ध्येय नहीं होना चाहिए। आसक्ति और मादकता इसमें नहीं होनी चाहिए। अपने विचार और मनोभाव के अनुकूल विवेक के साथ संसार में प्रकृति की सारी वस्तुओं की आवश्यकता है और विवेकपूर्ण जीवन में इसका उपयोग हो सकता है। किसी भी बाजा से और साधन-अभ्यास से कोई सम्बन्ध नहीं। बाजा बाहर की वृत्ति है और साधन-अभ्यास अन्तर की महावृत्ति है। बाहरी विषयों को न पकड़कर अन्दर में सूक्ष्म होकर सूक्ष्मतर अन्तरतर में समावेश हो शब्दब्रह्म का अनुभव करना है। यही सद्गुरुदेव का अमृत-उपदेश है।

प्रश्न- *मुरादाबाद के एक भक्त पूछते हैं कि पारख क्या वस्तु है?*

उत्तर- पारख कहते हैं ज्ञान को। सद्गुरु का ज्ञान ही पारख है। ज्ञान के दो भेद हैं– एक वाह्य तत्त्वज्ञान और दूसरा आभ्यन्तर-भेद-साधन। परोक्ष ज्ञान हो जाने पर ही सद्गुरु का पारख मिलता है। जब सद्गुरुदेव पारख करा देते हैं, तब वह प्रिय भक्त अपने साधन-योगाभ्यास में प्रवृत्त होता है।

Scanned with CamScanner

उत्तमकोटि के भक्तों को शीघ्र पारख होता है और वह शीघ्र देखे हुए तत्त्व को उपलब्ध करने के लिए प्रयत्न करने लगते हैं। कुछ लोग जीवतत्त्व को ही जान लेना पारख कहते हैं। जीवतत्त्व को पारख मानना अबोध का सूचक है। जब साधक गुरुगम्य द्वारा अपने विशेष केन्द्र पर स्थित होता है, तब चेतन-मंडल में चेतन सूर्य के उदय होने पर अन्धकार दूर होता है, उसी अवस्था में जीवतत्त्व का बोध होता है, फिर ब्रह्म की प्राप्ति होती है। बिना ब्रह्म-प्राप्ति तथा परमानन्द की उपलब्धि से, जीव के स्वरूप जान लेने से ब्रह्मानन्द की उपलब्धि नहीं होती है, परन्तु इन साधन, सत्यसिद्धान्तविहीन गुरुओं में पारख नहीं है। वह तो मन की भूमि में बैठकर माया के क्षेत्र में सब कुछ खोज रहे हैं। ऐसे लोगों को सारा मन का अभिमान छोड़कर सद्गुरु की शरण में आना चाहिए और ब्रह्मविद्या का पूर्णबोध कर सद्गुरु-लक्ष्य पर अपनी चेतन शक्ति को केन्द्रित करना चाहिए। सदगुरु के रहस्यमय भेद की जब सन्धि विदित होगी और सद्गुरु अपनी शक्ति का संचार शिष्य की आत्मा में करेंगे, तब पारख होगा। पारख आँख की मिचौनी नहीं है, न ब्रह्माण्डी ज्योतियों का दर्शन है। आज शुद्ध सन्तमत का ज्ञान लोप हो गया है। ब्रह्माण्डी तथा पिण्डी साधन करने वाले मनमानी गुरु बन संसार को अन्धकार में ले जा रहे हैं। श्री सद्गुरुरचित बीजक-भाष्य के छप जाने पर सन्तमत का सिद्धान्त सबको समझ में आ जायेगा। बीजक पर आपका रहस्यपूर्ण भाष्य है। सद्गुरु ही सद्गुरु के सिद्धान्त, ज्ञान को जान सकता है। बाहरी पुस्तक जाल और साधनशून्य तर्क-वितर्क में पड़कर आध्यात्मिक जन-समाज आज भी कर्तव्य-विमुख हो रहा है। अतएव आप सद्गुरु खोजकर सत्य सिद्धान्त का बोध प्राप्त करें।

हीरा की परख जौहरी करता है और आध्यात्मिक तत्त्वज्ञान की परख ब्रह्मनिष्ठ आचार्य सद्गुरु करता है। इसलिए आध्यात्मिक विषय प्रत्यक्ष होते हुए भी गोपनीय है। सन्तवाणी में पारख ज्ञान को ही कहा गया है।

सत्य नाम की कोथली, ग्राहक आगे खोल।
जोरे मिलेगा पारखी, लेगा महँगे मोल।।

सत्य नाम परमपुरुष की थैली, जो इसका खोजी ग्राहक है, उनके आगे खोलो। जो इसका महत्त्व जानने वाला पारखी, ज्ञानी होगा, उसको महँगे मोल पर लेगा अर्थात् आत्मसमर्पित भक्त ही पूर्णरूप से इसका मोल लगाता है और सर्वस्व देकर सर्वस्व की प्राप्ति करता है। अतएव पारख अन्तर के रहस्य-भेद-साधन के द्वारा सद्गुरु कराते हैं। सत्संग द्वारा समस्त विषयों का बोध प्राप्त होता है और बोध होने पर भली प्रकार साधन-अभ्यास चलता है। अतएव अभ्यास क्षेत्र में बढ़ने के लिए सत्संग-सेवा की आवश्यकता है। सेवा, सत्संग, भजन तीनों से आत्म-उत्थान और नर-जीवन का लक्ष्य पूर्ण होता है। गुरुकृपा ही केवलम्।

प्रश्न- सन्त किसे कहते हैं?

उत्तर- उपनिषदों में ब्रह्मज्ञानी को ही संत कहा गया है। सन्त सर्वोच्च तथा महान् पद है। आदि गुरु का नाम वेदों में सन्त है। सन्त से बढ़कर दूसरा सर्वोच्च पद जगत् में नहीं है। दूसरे शब्दों में साधन-अभ्यास करने वाले सभी सन्त हैं और इन सभी सन्तों का सन्तपति एक आध्यात्मिक विशाल साम्राज्य का अधिपति सद्गुरु होता है। एक सद्गुरु से अनेक सन्त, महात्मा होते हैं। ऐसे पुरुष को सन्त सद्गुरु कहते हैं।

प्रश्न- योग की अनेक भूमियाँ क्यों हैं?

उत्तर- अनेक कोटि की आत्मायें हैं, एक समान सर्व आत्मायें नहीं

Scanned with CamScanner

होतीं; न सबकी एक भूमि ही होती। अतएव योगाचार्यों ने योग की पाँच भूमियाँ बतायीं। "पंचक्षितीनाम्" ऋग्वेद में आया है, इसका यही अभिप्राय है। आत्मा को शरीर, मन, प्राण, बुद्धि, प्रकृति सबसे अलग होकर चेतन स्वरूप की प्राप्ति करना है और अपने चेतन स्वरूप की प्राप्ति हो जाने पर ही ब्रह्मानन्द-प्राप्ति का साधन होता है। ब्रह्मानन्द-प्राप्ति का साधन प्रकृतिपार है। क्योंकि ब्रह्म, मन, बुद्धि, इन्द्रियागोचर, प्रकृतिपार है। इसी को विहङ्गम योग कहते हैं। विहङ्गम योग के अतिरिक्त जितने योग हैं, सब प्रकृति-आधार पर चलते हैं। प्रकृति-आधार पर ही अनेक योग हैं। क्योंकि साधक आत्मा की एक कोटि नहीं। क्रमशः जीव का उत्थान और पतन होता है। योग की पाँच भूमियों द्वारा जीवात्मा अपनी शक्ति को क्रमशः समेटता हुआ एक विशेष परिधि में आ जाता है। फिर साधन-भेद से सद्गुरु की सहज कृपा से गुरुगम्य पर पहुँच कर शब्दातीत सहजानन्द को प्राप्त कर कृतकृत्य हो जाता है। अतएव सद्गुरु द्वारा साधन-भेद को जानकर, ब्रह्मप्राप्ति का प्रयत्न कर जीवन सफल करें।

प्रश्न- *अपना नया जन्म धारण करने में जीव समर्थ हो सकता है?*

उत्तर- जिसके अधीन अपना जीवन होता है, उसी का मरण भी अधीन होता है, जिसका मरण अपनी इच्छानुसार होगा उसी का जन्म भी इच्छानुसार होगा। स्वतन्त्र जीवन और मरण दोनों योगी आत्माओं में सम्भव हैं। पुराने वस्त्र को छोड़कर नया वस्त्र धारण करने की भाँति देहान्तर-प्राप्ति में धीर पुरुष को मोह नहीं होता। गीता के इस उद्धरण से योगी के मरण और देहान्तर-प्राप्ति में मोह नहीं होना बतलाया गया है। योगी आत्मा अपनी स्वतन्त्र इच्छानुसार प्रकट होता है। मृत्यु भी एक जीवन की अन्तिम क्रिया है, जिसके अधीन मन,

Scanned with CamScanner

प्राण और परमाणु होने से वे पुरुष अपने दूसरे जीवन का निर्माण करता है। यह योगी की महिमा है। कर्म ही बन्धन है। कर्म-बन्धन से छूटा हुआ जीवन्मुक्त योगी की शक्ति के अन्दर ही जीवन और मरण होता है। एक ही उत्तर में दोनों प्रश्नों का उत्तर हो जाता है।

प्रश्न- ***मरने के बाद श्राद्ध आदि कर्म क्या है?***

उत्तर- श्रद्धापूर्वक जीवित माता-पिता की सेवा-सत्कार करना चाहिए। अपनी तथा मृतात्मा की शांति के लिए ईश्वर की प्रार्थना, स्तुति, हवन, सद्ग्रन्थों का पाठ होता है। अपनी प्रार्थना में मृतात्मा को शांति की कामना की जाती है वही श्राद्ध है। इसी को इस स्वरूप से श्राद्ध का रूप दिया जाता है। वैदिक काल में ऋषितर्पण होता था।

जो ऋषि, मुनि, योगी अपनी इच्छानुसार शरीर का त्याग करते थे या संसार में जिस रूप से अमरत्व को प्राप्त होते थे, उन पूर्वज ऋषियों की संतान उनका तर्पण करती थीं और वे अपनी संतान की इच्छा भी पूर्ण करते थे। उसी का अनुकरण यह होता है। समस्त आत्माओं का ही तर्पण होने लगा। जो जीवित माता-पिता अपने जीवनकाल में ही सन्तान की इच्छा को तृप्त नहीं कर सकते हैं, भला वे मर कर किस अवस्था को प्राप्त होंगे। वे कब अपनी संतान की इच्छा तथा प्रार्थना को पूरा कर सकते हैं? अतएव तर्पण सप्त ऋषियों का या जीवन्मुक्त योगियों का होना चाहिए। उनसे इच्छित पूर्ण योगी सन्तान प्राप्त हो सकती है। इस विषय का सद्गुरुदेव समर्थन करते थे। अतएव यह निर्भ्रान्त सत्य वैदिक सिद्धान्त है। आत्मा एकदेशीय वस्तु है, उसका सदैव आवागमन प्रकृतिबद्ध क्षेत्र में होता रहता है। अतएव वह किसी एक स्थान में सदैव स्थित नहीं रहती है।

प्रश्न- गौ को जननी और पूज्य क्यों कहा जाता है?

उत्तर- जिससे शरीर के पोषण तत्त्व मिलते हैं। जिसके दूध, घी से बुद्धि और जीवनशक्ति बढ़ती है, जिसके गोबर से पृथ्वी की उर्वराशक्ति प्रखर होती है, जिसके द्वारा बछड़े पैदा होकर कृषि का उत्पादन करते हैं। भला ऐसी गौ को माता, जननी न कहा जाय तो किसको कहा जाय? प्राचीन काल में ऋषियों के यहाँ गोबर की अधिक मर्यादा थी। गौ के दूध से मस्तिष्क बलिष्ठ और तेजस्वी होता है। पोषण के सभी तत्त्व गौ के दूध में हैं। उसके दूध में विशेष जीवनशक्ति है। गौ मङ्गलस्वरूप और अनेक विघ्नों की नाशक बतलाई गयी है। गौ की सेवा यदि सच्ची भावना से की जाय तो अनेक इन्द्रियदोष दूर होते हैं। अनेक पातकों की शुद्धि में गौ का पालन मनु ने बतलाया है। गौ का पंचगव्य प्रसिद्ध है। गौ-मूत्र के पीने से अनेक प्रकार के पाण्डु रोग आदि तक दूर होते हैं। नेत्र की शक्ति बढ़ती है। गौ की निशिदिन सेवा करने वाला और गौ के गोबर को स्पर्श करने वालों के वीर्य की बीमारी दूर होती है। वीर्यक्षय आदि दोष दूर होते हैं। इसलिए वैदिक काल में ब्रह्मचारियों को गौ चराने की शिक्षा मिलती थी और ब्रह्मचारी गौ-सेवा करते थे। देश की उत्पादक शक्ति बढ़ाने में गौ की विशेष आवश्यकता है। इसलिये गौ माता के वंश का विस्तार होता रहे, ध्यान रखना चाहिए। सदैव से गौवृद्धि पर भारत के ऋषि-मुनि और सामाजिक सुधारकों का ध्यान रहा है। सबसे अधिक तो अन्न के उत्पादन करने वाले बछड़े गौवें ही देती हैं। भारत कृषि प्रधान देश होने से यहाँ गौ की पूजा सर्वश्रेष्ठ बतलायी गई है। दूध, दही, घी का बाहुल्य गौ के द्वारा ही हो सकता है। बाजारों में सही घी और दूध का अभाव बढ़ता जा रहा है। इस प्रकार यदि देश

Scanned with CamScanner

की यही स्थिति रही और गौवों पर ध्यान न रखा गया तो दवा की तरह शीशियों में गौ का घी और दूध बिकने लगेगा। परन्तु इस पर सबका ध्यान है। यह शुभ चिह्न दृष्टिगोचर हो रहा है। अतएव इसकी रक्षा और वृद्धि के लिये सबको प्रयत्नशील होना चाहिए। समय, स्थिति पर ध्यान रख देश के सारे कार्य हों, इस प्रकार का विवेक प्रत्येक देशवासी को होना चाहिए।

प्रश्न- व्यक्त, प्रतीक उपासना के बारे में क्या विचार है?

उत्तर- ईश्वर की उपासना आत्मा से होती है। वह ब्रह्म बाह्यकरण और अन्तःकरण का विषय नहीं है। जब प्राकृतिक करणों द्वारा वह प्राप्त नहीं होता तो उसकी प्राप्ति के लिये वाह्य कोई भी उपासना वेदविहित नहीं है-- *न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणां वा।।* यह मुण्डकोपनिषद् की उक्ति है। वह परब्रह्म चक्षु, वाणी, इन्द्रियों का विषय नहीं है, वह तप एवं कर्मों के द्वारा प्राप्त नहीं होता है। इसलिये ईश्वर की भक्ति, जिसे उपासना कहते हैं, वह प्राकृतिक करणों द्वारा नहीं होती। जड़ से चेतन की भक्ति नहीं होती, चेतन से चेतन की भक्ति होती है। इन्द्रियों से जो कुछ मन के सम्बन्ध से होता है, वे सभी कार्य बन्धन के हेतु होते हैं और कर्म प्राकृतिक क्षेत्र के फल देने वाले होते हैं। अतएव प्राकृतिक उपासना आध्यात्मिक उत्थान के लिए उचित नहीं है। ईश्वर निरवयव और अजन्मा, नित्य होने से सदैव प्रकृतिपार और कूटस्थ है। जो वस्तु प्रकृति के द्वारा बनी हुई इन्द्रियों से देखी जाती है, वह सदैव नाशवान् है। सर्वदेशीय विभुत्व का आवागमन नहीं होता। जन्म-मरण एकदेशीय, अणुपदार्थ में ही होता है, जिसे जीव कहते हैं। ईश्वर का जो रूप है वह योगाभ्यास द्वारा आत्मा से अनुभव किया जाता है। वाह्य

Scanned with CamScanner

व्यक्त रूप से कोई स्वरूप ईश्वर नहीं होता। वह परब्रह्म अव्यक्त, अचिन्त्य, अनिर्वाच्य, अनुभवगम्य है।

एक बात ऐसी है कि मनुष्य-जीवन में प्रत्येक श्रेणी के प्राणी हैं, उनका भिन्न-भिन्न विचार और जीवन की स्थिति है। योग दर्शन में एक सूत्र है वीतराग विषय वा चित्तम्। वीतरागी योगी पुरुष में धारण करने से चित्त शान्त होता है। इसी कारण महापुरुषों के चित्र या प्रतीक की पूजा होती है। ईश्वर का चित्र या प्रतिबिम्ब, प्रतीक व्यक्त नहीं हो सकता, क्योंकि वह मन, बुद्धि, इन्द्रियागोचर प्रकृति आत्मा से सूक्ष्म और परे है, परन्तु योगी सद्गुरु और सत्पुरुष का चित्र या मूर्ति हो सकती है, चित्र, प्रतिमा से ईश्वर की पूजा नहीं होती, बल्कि योगी पुरुष के चित्र में मन को एकाग्र करने का उपदेश अनार्ष ग्रन्थों में पाया जाता है। वैदिक सिद्धान्त में वाह्य प्रकृति जड़ की पूजा नहीं है, न चेतन आत्मा सजीव प्राणी को जड़ प्रकृति की उपासना करनी चाहिए। जहाँ पुराणों में पूजा और नवधा भक्ति का निरूपण है, वहाँ उत्तम ब्रह्म सद्भावो मध्यमं ध्यान धारणा स्तुति प्रार्थनाधमाझेयाः वाह्य पूजाधमाधमाः। यह कोई ऋषिवाक्य नहीं है। यह किसी वेद-विद्याहीन पौराणिक पंडित, विद्वान् की रचना जो वेदानुकूल न होने से प्रमाणित नहीं। क्योंकि वाह्य पूजा का विधान वेदों में कहीं नहीं है। फिर भी पौराणिक विचार के अनुसार भी वाह्य पूजा अधम में भी अधम पूजा है। अतएव ईश्वर की उपासना ज्ञानपूर्वक निग्रह धारणा करके जैसा वेदविहित सत्य सिद्धान्त है, ब्रह्मनिष्ठ आचार्य की शरण में रहकर पूर्ण बोध प्राप्त करके ही करनी चाहिए।

प्रश्न- गायत्री द्वारा ईश्वर की उपासना करनी चाहिए?

उत्तर- यजुर्वेद के ३६वें अध्याय का तीसरा मन्त्र है। इस मन्त्र

पर महर्षि सदाफलदेव जी महाराज ने अपना भाष्य भी किया है। जो यजुर्वेद-भाष्य में छप चुका है। गायत्री मन्त्र से ईश्वर की स्तुति तथा प्रार्थना होती है। इस मन्त्र में ईश्वर के गुणों का वर्णन और उपासना एवं आध्यात्मिक प्रेरणा की प्रार्थना की गयी है। इससे प्रत्येक प्राणी को नियमपूर्वक ईश्वर की उपासना करनी चाहिए। 'छान्दोग्योपनिषद्' में गायत्री की बड़ी महिमा गायी गयी है। इसके अतिरिक्त गायत्री की पूजा दूसरी क्या है। गायत्री द्वारा ईश्वर की प्रार्थना, स्तुति होती है। गायत्री की पूजा नहीं होती। एक आराध्य सबका पिता परमेश्वर है, उसी की पूजा वेद, उपनिषद् और सारे सद्ग्रन्थ एवं स्वर्वेद की ऋचायें बतलायी हैं। किसी जीव और प्रकृति की पूजा अनार्ष एवं विवेकहीन सिद्धान्त है। सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् परब्रह्म की ही एकमात्र स्तुति, प्रार्थना और उपासना होती है। वही सर्व का आराध्य और पूजा के योग्य है।

प्रश्न- श्वेत ध्वजा पर लाल रंग में 'अ' क्यों लिखा जाता है?

उत्तर- 'अ' व्यापक है। वेदों में 'अ' ब्रह्म को कहा गया है। 'अ' अनन्त है इससे 'अ' लिखा गया है, चाहे किसी रंग से 'अ' लिखें इससे कोई मतलब नहीं है।

प्रश्न- श्वेत ध्वजा क्यों है?

उत्तर- सब रंग कृत्रिम हैं। कुछ दिनों के बाद फीके पड़ जाते हैं, पर श्वेत रंग पक्का है, इसमें ह्रास-विकास नहीं होता है। इससे यह रंग ब्रह्म का रूप माना गया है। श्वेत ब्रह्म का द्योतक है, इसी से ध्वजा श्वेत रखी गयी है।

प्रश्न- नील रंग कृष्ण भगवान् या विष्णु भगवान् का क्यों कहा गया है?

उत्तर- विष्णु भगवान् या कृष्ण भगवान् ब्रह्म से भिन्न हैं। इसलिये यह रंग उनका कहा गया है, क्योंकि वे ब्रह्म नहीं हैं।

Scanned with CamScanner

प्रश्न- जीव अनादि है या ब्रह्म ही है या ब्रह्म से भिन्न है?

उत्तर- जीव अनादि है और ब्रह्म से भिन्न है। ये दोनों पदार्थ अलग-अलग चेतन, कूटस्थ, नित्य हैं, एक नहीं।

प्रश्न- जीव अणु कैसे है?

उत्तर- गमनागमन, आना-जाना व्यवहार एकदेशीय अणु पदार्थ में ही हो सकते हैं। जीव कभी जन्म, कभी मरण और अनेक योनियों में भ्रमण करता रहता है। सर्वदेशी पदार्थ सर्वत्र व्यापक होता है, उसमें आवागमन नहीं होता। इसलिए जीव अणु, एकदेशीय है।

प्रश्न- अनेक योनियों में भ्रमने वाला जीव कूटस्थ, नित्य कैसे है?

उत्तर- केवल शरीर का मरण होता है। शरीर में शरीरी अलग पदार्थ है। पिंजरे से उसमें रहने वाला पक्षी अन्य वस्तु है। उसी प्रकार शरीर, इन्द्रियादि पदार्थों में जीवात्मा अलग पदार्थ है। वह शरीर के छोड़ देने पर भी नित्य और कूटस्थ है, क्योंकि देहान्त के पश्चात् भी उसका स्वरूप सत्ता स्थित है। इससे उसमें ह्रास-विकास नहीं होते। जैसे पुराने वस्त्र को छोड़कर नये वस्त्र धारण करने से व्यक्तियों में कोई अन्तर नहीं दिखाई पड़ता, वह अपनी सत्ता से वहीं रहते हैं। उसी प्रकार आत्मा अनेक योनियों में भ्रमते हुए भी अपने स्वरूप सत्ता से नित्य, कूटस्थ रहता है।

प्रश्न- कूटस्थ का अभिप्राय क्या है?

उत्तर- जैसे लौहपिण्ड के ऊपर अनेक लोहे के समान तैयार होते हैं, परन्तु लौहपिण्ड में कोई परिवर्तन नहीं होता, उसी प्रकार जीवात्मा से अनेक कर्म, संसार-व्यवहार, भोग इत्यादि होते हैं, फिर भी अपनी सत्ता से वह एक रस रहता है। उसके चेतनत्व, जाति, स्वभाव में किसी प्रकार के परिवर्तन नहीं होते। इसलिये उसकी कूटस्थ संज्ञा दी गई है।

Scanned with CamScanner

प्रश्न- आत्मा जाति एक है, फिर अनेक तरह के व्यक्ति क्यों होते हैं?

उत्तर- यह जगत् जिस पदार्थ से बना है, उसको प्रकृति कहते हैं और प्रकृति में सत्, रज, तम ये तीन गुण लगे हुए हैं। जीव इन तीनों के स्वभावों के अनुकूल ही कर्म करते हैं। जब जिन गुणों के प्रभाव मन, इन्द्रियों पर पड़ते हैं, आत्मा वैसे ही कर्म मन, इन्द्रियादिकों से करता है। इस प्रकार प्रकृति के तीन गुणों के कारण अनेक जीवों के अनेक कर्म, गुण, स्वभाव होते हैं और उन्हीं के अनुकूल जीव अनेक प्रकार के कर्मों को करते हैं। इस कारण जीवजाति एक होने पर भी कर्म, गुण, स्वभाव के भेद होने से अनेक प्रकार के व्यक्ति देखे जाते हैं। *'व्यक्ति भेदे कर्म विशेषात्'* इस सांख्य सूत्र का यही अभिप्राय है कि कर्म की विशेषता से ही व्यक्तियों में भेद होते हैं।

प्रश्न- जीव चेतन, ज्ञानवान् होते हुए भी दुःखमय प्रकृति के विषयों में क्यों फँसा हुआ है?

उत्तर- जीव अल्पज्ञ है। इन्द्रियों के बाह्य प्रवाह में उसे अपने ज्ञान की सुधि नहीं रहती है। वह अपनी इच्छा के अनुकूल ही अनेक विषयों की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करता है, क्योंकि चेतन के अन्दर इच्छा का होना स्वाभाविक है। यदि इच्छा न हो तो उसे जड़ कहेंगे। चेतन में इच्छा होती है और उसी इच्छा से वह सुख या आनन्द का उपभोग करता है। इस प्रकार वृत्तियों के बहिर्निष्क्रमण होने से बाह्य सुख की इच्छा होती है और उन्हीं प्राकृतिक विषयों की इच्छाओं से नाना प्रकार के विविध कर्मों को करता है और उन कर्मों के द्वारा ही अनेक दुःख-सुख आदि फलों के उपभोग में रहते हुए अनेक आश, विश्वास, वासनाओं के वशीभूत होकर अपार दुःख के सागर में डूबा रहता है। इस प्रकार की आसक्ति

Scanned with CamScanner

और विषयोपभोग की सामग्री को पाकर निज ज्ञान की सुधि से विस्मृत हो फँसा रहता है।

प्रश्न- जीव और आत्मा एक ही वस्तु हैं?

उत्तर- हाँ! जीव और आत्मा एक ही पदार्थ को कहते हैं, परन्तु प्रकरण के अनुसार आत्मा शब्द के अनेक अर्थ होते हैं।

प्रश्न- आत्मा शब्द का क्या अर्थ है?

उत्तर- जो सदैव प्राप्त है वह आत्मा है। जो सतत प्रयत्नशील, चेतन और अपने स्वरूप से नित्य है वह आत्मा है।

प्रश्न- आत्मा का लक्षण क्या है?

उत्तर- न्याय में महर्षि गौतम ने *इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिंगम्* कहा है अर्थात् इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, ज्ञान जिनमें हो वह आत्मा है।

प्रश्न- इस सूत्र से तो आत्मा का अर्थ जीव हुआ?

उत्तर- हाँ जीव ही तो दुःख-सुख का भोक्ता है, उसी को ऋषि ने आत्मा कहा है। क्योंकि ब्रह्म में दुःख-द्वेष कैसे होंगे? इस प्रकार महर्षि गौतम के सिद्धान्तानुसार आत्मा को ही जीव कहते हैं।

प्रश्न- जीव सारे शरीर में व्यापक है या एक देश, स्थान पर रहता है?

उत्तर- जीव सारे देह-संघात का प्रकाशक है और वह शरीर के एक स्थान पर स्थित हो सारे शरीर का संचालन करता है। जैसे सूर्य एक स्थान पर रहकर सारे जगत् का प्रकाश करता है एवं जिस प्रकार दीपक एक स्थान पर रहकर ही सारे घर में उजाला करता है, उसी प्रकार जीवात्मा एक देश हृदय-स्थान में स्थित रह सारे शरीर समूह को संचालित करता है।

प्रश्न- जीव अल्पज्ञ कैसे है? वह तो विज्ञान के द्वारा सारे संसार में अपना अद्भुत चमत्कार दिखाकर संसार का भगवान् बनना चाहता है?

उत्तर- जो अपने अन्दर गुणप्रभा है, वही बाहर प्रकट होती है। जो द्रव्य के आश्रित है, वही गुण है। जीवत्व शक्ति के अन्दर जो विकास है, वे सभी कार्य मनुष्य से सम्भव हैं। अब तक ऐसे कार्य नहीं देखे गये, जो जीवत्व शक्ति के बाहर के हुए हों। मनुष्य अपनी शक्ति के उत्थान से सूक्ष्म से सूक्ष्म पदार्थों का अन्वेषण और प्राप्ति करता है, वे सर्व कार्य जीवत्व शक्ति के अन्दर ही हैं। ऐसा अब तक कोई कार्य नहीं देखा गया जो सृष्टि के पूर्ण क्रियाओं को कर सकें। परमेश्वर की तुलना में जीव की अल्पज्ञता है, परन्तु फिर भी जीव के अन्दर महान् शक्तियाँ मौजूद हैं, जिनके प्रयोग से विशेष शक्ति या प्रभा के उदय होने पर संसार में महान्-से-महान् कार्य होते हैं। संसार में जो भी विशेष शक्ति या पूर्ण कार्य प्रकट होते हैं, वे ईश्वर की सत्ता या व्यापकत्व से बाहर नहीं हैं। परमात्मा समस्त ज्ञानों का प्रकाश देने वाला सारे संसार का रचयिता है। उसी की प्रेरणा या चेष्टा से सृष्टि, प्रलय या रक्षा होती है। उसकी क्रिया जीवों की शक्ति से सदैव असम्भव है। अतएव संसार का रचयिता ईश्वर ही है, दूसरा नहीं। भगवान् तो संसार में होते ही हैं। धन, ऐश्वर्य, धृति, ज्ञान, वैराग्य आदि जिनमें हों, वे भगवान् हैं। ब्रह्मविद्, संसार में कल्याणकारी विशेष कार्यों के द्वारा जगत् का उद्धार कर सबके ऊपर भगवान् होता है, परन्तु यह पद विशेष महापुरुषों और योगियों का है। सर्व साधारण का नहीं।

प्रश्न- जब आत्मा अल्पज्ञ है और परिमित शक्तिमान् है तो सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर को कैसे प्राप्त कर सकता है, क्योंकि समान धर्म वाले पदार्थों में ही संयोग होते हैं?

उत्तर- जीव में अल्प और परिमित शक्ति होने से ही उसे सर्वज्ञ

और अनन्त शक्तिमान् जगदीश्वर के शरण की आवश्यकता होती है। निर्धन धनवान् और अपठित पठित होने के प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार प्रकृति के दुःखों से व्याकुल जीव शान्त और परमानन्दस्वरूप परब्रह्म की प्राप्ति के लिये पूर्ण पुरुषार्थ कर प्राप्त करता है। जिसमें कमी है वही अपनी पूर्णता की परिपूर्ण प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील होता है। जीव और ब्रह्म दोनों अलग-अलग पदार्थ हैं। एवं दोनों की एक चेतन जाति है, परन्तु कर्म, गुण, स्वभाव और शक्ति की विभिन्नता है। ज्ञानस्वरूप दोनों हैं, इस प्रकार दोनों चेतन जाति और ज्ञानवान् होने से ही दोनों में सम्बन्ध अर्थात् संयोग होता है, क्योंकि दो विजातीय पदार्थों के संयोग या समिश्रण नहीं होते। अतएव जीव परिमित और अल्प शक्तिमान् होने से ही इस दुःखमय संसार से पार होने के लिये महाप्रभु जगदीश्वर की भक्ति करता है।

प्रश्न- ***जब दो विजातीय पदार्थों में संयोग नहीं होते, तब चेतन आत्मा जड़ प्रकृति से क्यों सम्बन्धित है।***

उत्तर- दो भिन्न गुण वाले पदार्थों में कभी सम्बन्ध नहीं होते। अपने स्वभाव से भिन्न जड़ प्रकृति में आत्मा इसलिये दुःखी है कि उसके स्वभाव चेतन ब्रह्मानन्द-उपभोगी होने से सदैव प्रकृति के विजातीय सम्बन्धों से दुःखी रहता है और इस दुःखमय जगत् से अलग होने के लिये ब्रह्मानन्द की प्राप्ति के लिये उद्योग करता है। बिना ब्रह्म-प्राप्ति किए हुए उसे जड़ संसार का निवास अपने स्वाभाविक धर्म से विरुद्ध सांयोगिक है। आत्मा का स्वाभाविक भोज्य ब्रह्मानन्द ही है। प्रकृति के विषयों का उपभोग कृत्रिम है। इसलिये जड़ प्रकृति का सम्बन्ध चंचल, दुःखदाई है। स्थिर सम्बन्ध जिसे कहते हैं, वह जीव का ब्रह्म से ही हो सकता है।

Scanned with CamScanner

प्रश्न- जब आत्मा प्रकृति से सूक्ष्म है, तब स्थूल प्रकृति उसमें क्यों लगी है?

उत्तर- आत्मा प्रकृति के विषयों में फँसा है और अपना सुख जड़ प्रकृति के विषयों में ही जानता है। प्रकृति उसमें क्यों लगी है? वही प्रकृति के विषयों को भोगते-भोगते प्रकृति को अपना घर बना लिया है और प्राकृतिक संसार के सुखों में ही अपने को तल्लीन किया है। प्रकृति जड़ किसको पकड़ेगी। जीव ही निज ज्ञान की विस्मृति से अनेक जन्मों के विषयों व भोगों की वासनाओं से ग्रसित होकर जड़ प्रकृति में लगा हुआ है। भोक्ता चेतन होता है। अतएव आत्मा ही प्रकृति में फँसा है। स्थूल प्रकृति का आत्मा में सम्बन्ध होने का यही अभिप्राय है।

प्रश्न- जिह्वा, कर्म, कछोटरी का त्याग कैसे होगा?

उत्तर- हरेक क्षेत्र का अलग-अलग नियम, उद्देश्य हुआ करता है। इस प्रकार जो व्यक्ति आध्यात्मिक क्षेत्र में पदार्पण करता है, उसके लिये सन्तवाणी में जिह्वा, कर्म, कछोटरी के त्याग का आदेश दिया गया है।

जिह्वा कर्म कछोटरी, तीनों घर में आग।
कबीरा पहिले त्याग करि, पीछे ले वैराग।।

जहाँ इन्द्रियों के सुख की लालसा लगी है, वहाँ ब्रह्म के सुख की इच्छा कब हो सकती है? विषय ही तो बन्धन है और वही सारे दुःख, द्वन्द्व, अशान्ति का कारण है। विषय का प्रलोभी मुमुक्षु नहीं होता। जिह्वा रस का आस्वादन करती है। सात्त्विक और उपादेय भोजन से शरीर की क्रिया ठीक से संचालित होती है। आज अपथ्य, कुसंयम और जिह्वा के रस के प्रलोभन एवं अनेक प्रकार के भोजन करने से नाना

Scanned with CamScanner

प्रकार के रोग होते देखे जा रहे हैं। जिसका भोजन शुद्ध नहीं, उसका मन शुद्ध नहीं हो सकता और जहाँ मन शुद्ध नहीं, वहाँ इन्द्रियाँ ठीक से अपने मार्गों पर नहीं चल सकतीं। आरोग्य, गुणवर्धक एवं पुष्टिकारक पदार्थों के सात्त्विक सेवन के लिये जिह्वा का वश में होना अत्यन्त आवश्यक है। आमाशय, पाकस्थली का ठीक से संचालन हो, गुर्दे और अँतड़ियाँ ठीक से काम करें, यह जिह्वा के संयम के ऊपर अधिक निर्भर है। जिस प्रकार का भोजन रहेगा या जिस प्रकार का रस जिह्वा ग्रहण करती है, उसी प्रकार का रक्त, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा, शुक्र का प्रभाव सारे शरीर पर पड़ता है। अधिक भोजन भी अधिक बीमारियों का कारण है। जो जिह्वा के रस का प्रलोभी अनेक प्रकार के खट्टा, मिट्ठा चरपरे पदार्थों के सेवन से उदर को रस के प्रलोभन से विवश होकर भरने लगता है और पक्वाशय की अग्नि ठीक से उसे पाचन न कर ऐसे ही बाहर फेंकने का कार्य करने लगती है। पाचन शक्ति के विकृत होने पर अपानवायु दूषित होने लगती है और अँतड़ियाँ ठीक से मल निकालने के कार्य को करने में दुर्बल होने लगती हैं। फिर जिह्वा के रस से बनी हुई आमाशय की दुर्बलता के कारण कब्जियत, मलावरोध एवं वीर्य, खून की अनेक बीमारियाँ आ पहुँचने लगती हैं। आज के युग में जिह्वा, इन्द्रिय-प्रलोभियों की रसास्वादन की इच्छा रोगों का जड़ है। मस्तिष्क तभी ठीक से काम करेगा, जब आपकी पाचनशक्ति ठीक रहेगी। पाचनशक्ति तभी ठीक रहेगी, जब आपकी जिह्वा का संयम सावधानी के साथ किया जाय। वीर्य की सारी बीमारियाँ पेट के रोगों के कारण होती हैं। अतएव जिह्वा के रस का त्याग जिसके कारण साधक को अनेक प्रकार के चरपरे, खट्टे, गर्म, मसालेदार, उत्तेजक पदार्थों के

खाने की प्रवृत्ति बढ़ती रहती है। त्याग करना बहुत जरूरी है। रस-जिह्वा को जीतकर शुद्ध और सात्त्विक आहार के द्वारा आमाशय शुद्धरूप से पाचनक्रिया की प्रणाली को संचालित करता है और उस शुद्ध व्यवहार के प्रभाव से मन और मस्तिष्क भी शुद्ध रहता है एवं शुद्ध मन वाला व्यक्ति सुयोग्य और धार्मिक एवं आध्यात्मिक प्रवृत्तियों की ओर अग्रसर होने लगता है। शुद्ध आहार के लिये जिह्वा का संयम बहुत जरूरी बतलाया गया है। जिह्वा-रस-प्रलोभी कभी इन्द्रियों का दमन नहीं कर सकता। ब्रह्मचर्य, **संयम**, सदाचार के लिये सात्त्विक आहार, शुद्ध विहार का होना अत्यन्त जरूरी समझता हूँ। बिना शुद्ध आहार के, चटपटे पदार्थों के सेवन के त्याग के कभी मन पवित्र, शुद्ध विवेक वाला नहीं हो सकता। सात्त्विक आहारी ही पूर्ण ब्रह्मचर्य की क्रियाओं और योग-साधना के नियमों का यथोचित पालन करता है। हठयोग में प्राणायाम, मुद्रा, बन्ध, आसनादि के लिये सात्त्विक आहार हो, जिससे साधन-अभ्यास की वृद्धि और शरीर स्वस्थ-मन प्रसन्न हो एवं सतोगुण के प्रकाश में विवेक-वैराग्य से परिपूर्ण होकर और अध्यात्म की सच्ची शिक्षा को प्राप्त करने के लिये मनुष्य उत्सुक हो, कर्मशील बना रहे। मन में उद्वेग उत्तेजक पदार्थों के खाने से होता है। सात्त्विक में ये दोष नहीं मिलते। जो लोग सब पदार्थों के भोजन और वस्तुओं का सेवन कर अध्यात्म की शक्ति प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं वे यथार्थज्ञान से रहित हैं। शुद्ध आहार, सात्त्विकता, प्राणायाम, मुद्रा के द्वारा स्वाभाविक ब्रह्मचर्य का दृढ़ संयम होता रहता है और संयमी, उत्तम और आदर्श विचारों से परिमार्जित रह विवेक से परिपूर्ण रहता है। जबरदस्ती किसी का मन निरोध और संयमी नहीं होता। इसके लिए सात्त्विक आहार और इसके प्रभाव से सात्त्विक मन होगा

एवं सात्त्विक बुद्धि से सदैव विचार और शुद्ध विमर्श होंगे एवं वे उत्तम पथ का सदैव अधिकारी हो, उन्नति के पथ पर निशिदिन आगे बढ़ते जायेंगे। किसी भी तरह के जीवन में पारिवारिक हो वा सामाजिक, शुद्ध विवेक होने पर सात्त्विक जीवन के प्रयत्न से सफलता प्राप्त होती है। सात्त्विकता ही अध्यात्म की भित्ति है। सात्त्विकता में ही संयम है और सात्त्विकता में ही स्वाभाविक इन्द्रियों का गठन ब्रह्मचर्य की प्रतिभा प्रकट होती है। यह सब तभी हो सकता है, जब आप जिह्वा को वश में करके सात्त्विक भोजन का उपयोग करते रहें। इसलिये सन्त वाणी में कहा गया है कि–

रूखा सूखा खाय के, ठंढा पानी पीव।

देखि विरानी चूपड़ी, मत ललचाओ जीव।।

नहीं तो

खट्टा मिट्ठा चरपरा, जिह्वा सब रस लेय।

चोरो कुतिया मिल गयी, पहरा किसका देय।।

दूसरा त्याग कर्म है। कर्म का त्याग अपने शुद्ध स्वरूप में आने से ही हो सकता है। यहाँ पर कर्म के त्याग का अभिप्राय सांसारिक आशा-वासनायुक्त संसार की कामनाओं की पूर्ति के लिए जो साधन, ईश्वर-उपासना की जाती है वह कर्म-बन्धन का हेतु है। अतएव आसक्तिरहित जिसके कर्म में कर्त्तव्य की भावना है, ऐसे विचारपूर्वक किये हुये कर्म वैराग्य तथा उत्तम गुणों के संचालक होते हैं और निष्काम कर्म करने वाले मिले हुये अपने कर्मों के फलों का आसक्तिरहित हो उपभोग करते हैं। परन्तु यह अवस्था जीवन्मुक्त योगी की हो सकती है। केवल गीता के स्वाध्याय पर साधनतत्त्व से रहित गुरुहीन होने से नहीं हो सकती। गीता में जो उपदेश है वह योग, कर्तव्य-परायणता जीवन में आचरण के लिये है। जो

जीवन में है, वही आचरित धर्म पुस्तकरूप में प्राप्त हो रहा है। उसके साधन और सिद्धान्त के अनुसार जीवन व्यतीत होने पर अध्यात्म के प्रकाश में अनासक्ति कर्म का रहस्य प्रस्फूटित होता है। कर्म की निवृत्ति के लिये जो कर्म किये जाते हैं, उन्हें विकर्म कहते हैं। विकर्मनिष्ठ जिज्ञासु होता है जो मुमुक्षु बन अधिकारीपन का उत्तरदायित्त्व ग्रहण कर अध्यात्म के जगत् में प्रवेश करता है। शम, दम, तप, तितिक्षा इन्द्रियनिग्रह आदि जो जिज्ञासु के शुद्ध गुण हैं, विकर्म कहे जाते हैं। कर्म से बन्धन होता है और विकर्म से जिज्ञासु अधिकारी बन कर्म-निवृत्ति के लिये योग्य गुणों का पात्र बनता है। इसीलिए कर्म के त्याग का उपदेश भी उक्त वाणी में दिया गया है।

अध्यात्म-क्षेत्र में कर्म का त्याग है, परन्तु उचित और अनावश्यक कर्मों का विधान वेदों में तथा शास्त्रों में बतलाया गया है, जिसके द्वारा समाज या संसार की रक्षा या समुन्नति होती है। कर्म ही से सृष्टि है, कर्म से ही जगत् का उत्थान है। कर्महीन जीवन व्यर्थ है और केवल बाहरी कर्मों के त्याग से आसक्ति, वासना, संस्कार रूपी कर्मों का विनाश बिना योगाभ्यास के हो नहीं सकता। इसलिये पाठकगण कर्म के त्याग का अभिप्राय समझने में भूल न करेंगे। विधिपूर्वक, उचित और आवश्यक कर्म का पालन सदैव होना चाहिए। परन्तु वह कर्म ज्ञान के प्रकाश में होना चाहिए। अतएव आसक्ति और प्राकृतिक सभी कर्मों की वासना का त्याग करके ही अध्यात्म में आगे बढ़ें। यह उपदेश इस वाणी से दिया गया है। अब रहा तीसरा त्याग जिसे कछोटरी शब्द से सम्बोधित किया गया है। इन्द्रियनिग्रह सबसे आवश्यक साधन है। बिना कछोटरी के संयम से ज्ञान का प्रवाह उत्कृष्ट नहीं हो सकता। कछोटा लंगोटा को कहते हैं। मन के संयम से इन्द्रियों का संयम होता है, जहाँ मन का संयम नहीं वहाँ बलात् इन्द्रियों के रोकने का प्रयत्न व्यर्थ प्रमाणित

Scanned with CamScanner

होता है। इसलिए सन्तवाणी में विन्दु-निरोध पर विशेष जोर दिया गया है। *'मरणं विन्दु पातेन जीवनं विन्दु धारणात्।'* विन्दुसिद्धि की महिमा महान् है। योग के आसन और क्रियाओं द्वारा साधक को उचित ज्ञानपूर्वक विन्दु का संयम करना चाहिए। बिन्दु में ही प्राणशक्ति है। जिसका प्राण स्थिर नहीं, उसका मन स्थिर हो नहीं सकता।

ब्रह्मचर्य का प्रताप इसी में है कि साधक प्राण को स्थिर कर मन का निरोध करें। इन्द्रियाँ मन के अधीन हैं। अतएव मन का निरोध योग-साधन द्वारा करके इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने की कोशिश करनी चाहिए। इसके ऊपर लम्बी-चौड़ी पुस्तक लिखनी पड़ेगी। यह महान् विषय है, जिसे थोड़ी पंक्तियों की शब्दावली में हम पूरा नहीं लिख सकते। इसके लिये अपार ज्ञान का समुद्र सामने नाचने लगता है। इसका निरोध महान् है और इसकी सफलता और महान् है। विवेकी, सूक्ष्मदर्शी साधनरूप युक्तियों द्वारा इसका निरोध कर सकेंगे। बलात्कार रोकने का प्रयत्न क्षणिक होगा। इस विपुल शक्ति का धारण मन के समझौते पर ही शान्तिपूर्वक जीतने का प्रयत्न करना उपादेय हो सकता है, नहीं तो इन संग्राम से पराजित हुए बन्धुओं की दुर्दशा का वर्णन लेखनी से नहीं हो सकता। इसकी संयमशीलता कैसे प्राप्त होगी?

जब जीव सद्गुरु शब्द विवेकी तो मन होवे चेरा।
युक्ति जतन से मन को जीते जियते करे निबेरा।।

युक्ति और यत्न से इन्द्रियों का निरोध हो सकता है। केवल बाहरी त्याग कर देने से नहीं। युक्ति और समझौते करके ही इस शत्रु को हम पराजित कर सकेंगे। लड़कर जीतने का प्रयत्न करना पराजित होने के ही तुल्य है। अतएव जिह्वा, कर्म, कछोटरी-- इन तीनों विषयों का त्याग अर्थात् छोड़कर ही हम भगवद्प्राप्ति, प्रभु-भजन में आगे बढ़ें, नहीं तो 'तीनों घर में आग' अर्थात् अग्नि है, जो

समय और अपने विषयों के प्राप्त होने पर मुझे उद्विग्न कर नीचे गिराने का प्रयत्न करेगी। इसके लिए आवश्यक है कि पहले ही इसकी आशा-वासना छोड़कर अध्यात्म क्षेत्र में पदार्पण करें, जिससे कि अपनी आध्यात्मिक यात्रा शीघ्र पूरी हो एवं निष्कण्टक, बाधाशून्य मार्ग से चलकर हम अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में अवश्य सफलीभूत हों, यही इस वाणी का भाव है।

प्रश्न- काम, क्रोध, लोभ, मोह से निवृत्ति कैसे होगी?

उत्तर- जब प्रकाश आना आरम्भ होता है, तब अन्धकार दूर होने लगता है। प्रकृति के अनेक आवरण हैं, जो आत्मा के प्रकाश को ढाँपे रहते हैं। जैसे-जैसे आत्मा की चेतना अन्तर-जगत् में प्रवेश करने लगेगी, वैसे-वैसे प्रकृति के गुण दूर होने लगेंगे और आत्मा में स्वतः अपना प्रकाश क्रमशः आने लगेगा। प्रकृति के गुण प्रकृति में रहते हैं। जब प्राकृतिक देहाध्यास का भाव समाप्त हो जाता है, तब प्राकृतिक हर्ष, शोक, मोह, कामादि वासनायें नष्ट होने लगती हैं। प्रकृति के पारंगत हुई आत्मा उचित और आवश्यक कामों के लिए अपनी चेतना को शरीर, मन, इन्द्रियादिकों द्वारा जगत् में प्रेरित करती है और जगत् के कार्यों को भी जगत्-व्यवहार के लिए संचालित करती है। योगाभ्यास द्वारा प्रकृति से परे आत्मा के पहुँच जाने पर प्राकृतिक दुर्गुण स्वतः दूर हो जाते हैं। वशीभूत हुई शक्तियाँ अपने अधीन हो काम करने लगती हैं। इसलिए काम, क्रोध, मोहादिक की निवृत्ति के दूर का कोई प्रश्न नहीं रह जाता। काम, क्रोध, लोभ-- ये तीन नरक के द्वार हैं। इन्हीं से जगत् में दुःख, अशान्ति और नाना प्रकार के उपद्रवों का आक्रमण होता है, परन्तु सद्गुरुदेव के ज्ञान द्वारा अध्यात्म की छत्रछाया में चलने पर स्वतः प्राकृतिक गुण दूर हटने

Scanned with CamScanner

लगते हैं। इसलिए एकमात्र उपाय अन्तर-रहस्य आध्यात्मिक योग-साधन है।

प्रश्न- भक्ति की महिमा क्या है?

उत्तर- भक्त के लिए कोई कार्य असम्भव नहीं है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष– चारों फलों के प्रदाता परब्रह्म की प्राप्ति हो जाने पर जीवन के समस्त उद्देश्यों की प्राप्ति, परमानन्द की उपलब्धि, मानव-जीवन की पूर्णता, कृतकृत्यता प्राप्त होती है। भक्ति की पूर्णता ही मानव-जीवन की पूर्णता है। अतएव भक्ति का गौरव जीवन की पूर्ण सफलता है, जहाँ सर्वत्र आनन्द, उल्लास और उन्नति की पराकाष्ठा की प्राप्ति हो जाती है। भक्ति का उद्देश्य ईश्वर की प्राप्ति है और ईश्वर की प्राप्ति के पश्चात् सब कुछ की प्राप्ति हो जाती है। आध्यात्मिक आनन्द में जीवन महाशक्तिशाली, तेजस्वी, पूर्णप्रतिभावान एवं अनेक ऐश्वर्यों से युक्त हो विशाल शक्ति का पुञ्ज होता है। भक्तवशी भगवान् की युक्ति के अनुसार इसकी महिमा का वर्णन जितना भी किया जाय अल्प ही है।

प्रश्न- भक्ति के बीज का नाश नहीं होता है?

उत्तर- इस जीवन में संस्कार-वासना के अनुसार जो कर्म है, उसी के अनुसार आगे का भोग या जीवन-यात्रा चलती है। वर्तमान के जीवन से अतीत तथा अनागत दोनों का सम्बन्ध है। इसलिए जो संस्कार जीवन में इस समय हैं वही आगे भी रहेंगे। इसी के बीच में यदि शरीर का परिवर्तन हुआ, तो ठीक इन्हीं संस्कार, वासना, कर्मों के अनुसार दूसरे जीवन में भी यही स्थिति बनी रहेगी। कर्मों के बीज का नाश नहीं होता। वही कर्म संस्कार, भोग, वासना अनेक जन्मों का कारण है। इसी प्रकार भक्तिरूपी बीज का वपन किसी विशेष प्रकाश-पुञ्ज द्वारा आत्मा में आरोपित हो जाने पर वह निश्चय अंकुरित

और पल्लवित-पुष्पित होकर विकसित होता है। भक्ति के बीज का नाश नहीं होता। इस जीवन में अथवा दूसरे जीवन में फिर पूर्व जन्म के संस्कार के अनुकूल अवश्य आध्यात्मिक प्रकाश की प्राप्ति होती है और उस भक्ति-रूपी बीज का विकास होने लगता है। इसी अवस्था को गीता में योगभ्रष्ट कहते हैं। योगभ्रष्ट पुरुष जन्मान्तर में *'पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः।'* के युक्ति के अनुसार वह विषयों में पूर्ण हुआ योगभ्रष्ट पूर्व के अभ्यास से ईश्वर की ओर आकर्षित किया जाता है। पूर्व का भक्ति संस्कार इस जीवन में पूर्ण हो आत्मिक लक्ष्य की निश्चय सिद्धि कराता है। इसी सिद्धान्त पर भक्ति का बीज नष्ट नहीं होता है, कहा गया है–

भक्ति बीज विनसे नहीं जो युग जाईं अनन्त।
ऊँच नीच घर जन्म के सोइ सन्त का सन्त।।

कुछ प्राणी किसी कष्ट या संकट से बचने के लिए आत्महत्या करते हैं कि मेरे इस शरीर के नाश होने पर इस दुःख का नाश होगा। परन्तु यह सिद्धान्त बिलकुल अमान्य तथा विचारविरुद्ध है। इस जीवन के कर्म, संस्कार द्वारा बनी हुई स्थिति ठीक इसी रूप में ईश्वरीय विधान के अनुसार प्राप्त होगी और उसके दुःख-सुख का भोग होगा। कर्मभोग बिना भोगे नहीं छूटता। आध्यात्मिक प्रकाश में योग की अग्नि से कर्मों का नाश होता है। दूसरे किसी यत्न से नहीं, यही संसारचक्र है और इसी को आवागमन, भव-बंधन दुःख कहते हैं। जीवन कर्म से सम्बद्ध है और कर्मभोग के लिए जीवन को प्राप्त करना आवश्यक है। कर्म और कर्मों का भोग, यही सृष्टिचक्र है। इससे बचने के लिए आध्यात्मिक प्रकाश और तत्त्वज्ञान के शरण की आवश्यकता है। अतएव आत्मा में भक्ति-रूपी बीज जो प्राप्त हुआ है, उसका कभी नाश

Scanned with CamScanner

नहीं होता। उसी भक्ति का विस्तार हो, इसका उद्योग प्रत्येक विवेकी को करना चाहिए।

प्रश्न- गुरु की कृपा कैसे होगी?

उत्तर- अधिकारी गुणसंयुक्त, पूर्ण आस्तिक्य भाव और अटूट विश्वास एवं अनन्य शरणागति ही गुरुकृपा के लिये उपयुक्त है।

प्रश्न- सारशब्द क्या है?

उत्तर- जो सारे शब्दों का आधार, अधिष्ठान एवं स्वामी है, जिसे वेदों में परम अक्षर और उपनिषदों में *'अक्षरात्परतः परः'* (मुण्डक०) कहा गया है, जो अक्षर से भी सूक्ष्म और परम प्रकाशमय है, वह परम अक्षर, परमब्रह्म सर्वव्यापी, निःशब्द, सारशब्द है। क्षर, अक्षर सबका प्रकाशक और सबसे सूक्ष्म सारशब्द है।

प्रश्न- अनासक्ति योग का साधन क्या है?

उत्तर- अनासक्ति के लिए कर्मयोग ही साधन है। जब योग के प्रकाश में आत्मा प्रकाशमान होगी और उसमें आध्यात्मिक शक्ति का प्रादुर्भाव होगा, उस योगजन्य अवस्था में जो कर्म होंगे वे अनासक्तिपूर्ण होंगे। इसलिये अन्तर-साधन ब्रह्मविद्या का प्रकाश ही अनासक्ति होने का साधन हो सकता है। अनासक्ति कोई योग नहीं कहा जा सकता। योग तो एक ही है। परन्तु अवस्था तथा कोटिभेद से उसकी अनेक अवस्थायें होती हैं एवं पूर्ण ब्रह्मनिष्ठ गुरु के साधन-भेद द्वारा आत्मा की वास्तविक शान्ति और जीवन के ऊँचे लक्ष्य की प्राप्ति होती है।

प्रश्न- मन को वश में करने का सरल उपाय क्या है?

उत्तर- मन का प्रादुर्भाव जहाँ से होता है एवं जहाँ मन का आदि कारण तत्त्व है, उसमें मन को लगाने से मन स्वतः शान्त होने लगता है। मन को शान्त कर मनस्वी होने के लिए साधन सहज योग का अभ्यास है। इसके अतिरिक्त किसी

Scanned with CamScanner

प्रकार का कर्म, तप, संयम नहीं, जिससे मन वश में किया जा सके। मन अपने मूल कारण में जब स्थिर होने लगता है, तब मन के सारे कार्य बन्द होने लगते हैं और योगाभ्यासी मन के कारणतत्त्व सम्बन्ध का विवेक कर मन का मनस्वी हो, तीन पाद अमृत परमानन्द का आस्वादन करने लगता है। यही एकमात्र उपाय मन को वश में करने का है, जिसका सद्ज्ञान ब्रह्मनिष्ठ आचार्य के द्वारा प्राप्त होता है।

मन सायर मनसा लहर बूड़े बहुत अचेत।
कह कबीर सोई बचिहें जाजर सार विवेक।।

—सन्तवाणी

प्रश्न- योग का प्रारम्भ कहाँ से होगा?

उत्तर- आत्मा जिस स्थान पर है वहीं से अध्यात्म में उत्तरोत्तर उसका उत्थान होगा। योग की पाँच भूमियाँ हैं। पहली भूमि में चित्तवृत्तियों का निरोध, कर बाहरी शक्तियों का एकत्र संचय कर अन्दर प्रवेश करना होगा।

प्रश्न- मूल क्या है?

उत्तर- चित्तवृत्तियों का निरोध कर अन्तर-जगत् में प्रवेश करना है, जो आपको बतलाया गया है।

प्रश्न- मन जब अपने अधीन है, तब उसके विषय में आत्मा की प्रेरणा को बन्धन का कारण क्यों बतलाया है?

उत्तर- अविवेकी का मन अपने अधीन नहीं रहता है। योग की विशुद्ध अवस्था में आत्मा को अपने प्रकाश और शक्ति का ज्ञान रहता है और वही प्रकाशमान योगी मन, इन्द्रियादिकों पर स्वतन्त्र शासन करता है। आत्मा में विषयों को भोगते-भोगते उनकी इच्छायें इतनी प्रबल हो गयी हैं कि उन्हें मोहवश छोड़ने

Scanned with CamScanner

का विचार तक उसमें नहीं होता। इसी को तो वासना कहते हैं। यथार्थ कर्त्तव्य के ज्ञान होने पर ये दुर्गुण स्वतः हटने लगते हैं। चोर को चोरी के बुरेपन का और मद्यपी को मद्य के नशेपन का ज्ञान होने पर भी वह अपनी इच्छाशक्ति की दुर्बलता के कारण अपने को नहीं रोक सकता। इस प्रकार ऐसे दुष्कर्मों के करते-करते उसकी वासना घर बना लेती है और वह विवेक से अत्यन्त शून्य हो अपने यथार्थ कर्तव्य से रहित हो जाता है। प्राकृतिक इच्छायें ही तो बन्धन हैं। जहाँ योग है, वहीं बंधन और दुःख है। अपना स्वाभाविक कार्य शुभ माना जाता है, किन्तु आत्मा चेतन होकर जड़ पदार्थों में सुख खोजता है, जो सदैव असंगत और अनुपयुक्त है।

प्रश्न- ज्ञानवान बन्धन में क्यों पड़ता है?

उत्तर- आत्मा ज्ञानवान होते हुए भी इच्छावान है। ज्ञान और इच्छा ये दोनों आत्मा में स्वाभाविक रूप से हैं। महर्षि गौतम ने इच्छा, ज्ञान, प्रयत्न ये आत्मा के चिह्न बतलायें हैं। अतएव चेतन की इच्छा सदैव नित्य है। वह कभी उससे अलग नहीं हो सकती। जहाँ इच्छा नहीं वहाँ प्रयत्न का उद्देश्य नहीं हो सकता। प्रयत्न इच्छा ही पर आधारित है, परन्तु चेतन की इच्छा चेतन की होनी चाहिए, किन्तु यहाँ पर इच्छा जड़ योग्य वस्तुओं की हुई, इसलिए इसको बन्धन का कारण बतलाया गया है।

प्रश्न- बन्धन तो अज्ञान से होता है और आपने विषयों की इच्छा को बतलाया?

उत्तर- बन्धन तो अज्ञान से ही है, परन्तु अज्ञान कहाँ से प्रकट होता है? इसका उत्तर महर्षि कणाद ने *इन्द्रिय दोषात् संस्कार*

दोषाद्वाविद्या कहा है, यानी इन्द्रिय और संस्कार-दोषों से अविद्या उत्पन्न होती है। अविद्या का कारण इन्द्रिय-भोगजन्य संस्कार ही है। जहाँ कर्तव्य के अनुकूल कार्य है, वहाँ बन्धन कैसे होगा? परन्तु सूत्रकार ने इन्द्रिय-सुखों को ही, जिसके भोग से संस्कार-वासनायें बनती हैं, कारण बतलाया है। अतएव दुःख-बन्धनों से निवृत्त होने का सत्य उपाय त्याग और वैराग्य एवं गुरु का बतलाया हुआ सद्ज्ञान, सदुपदेश है। जिस अंकुश के प्राप्त हो जाने पर मतवाला हाथी-रूपी मन अपने नियन्त्रण में रहने लगे। योग की शिक्षा का प्रारम्भ यहीं से होता है। अतएव सत्संग, विवेक द्वारा साधन-अभ्यास को बढ़ाने का प्रयत्न करें। जिससे आत्मा के ज्ञान की वृद्धि हो और उत्तरोत्तर शक्तियों का संचय एवं विकास हो।

प्रश्न- ***आत्मा तो स्वतः ज्ञानस्वरूप है, उसे इन्द्रियों से कार्य करने का क्या अभिप्राय है?***

उत्तर- आप स्कूल के शिक्षक हैं, आप बतावें की कर्ता का लक्षण क्या है और कर्ता कैसे क्रिया का सम्पादन करता है? कर्ता बिना करण के क्रिया नहीं करता। स्वामी स्वतन्त्र और शक्तिसम्पन्न होने से ही नौकरों से काम लेता है। स्वामित्व और शक्तिमत्ता का यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि वह बिना साधन और प्रयास से ही अपने कार्यों को पूरा करता है। कर्ता की शक्ति ही करणों के समीकरण से कार्यों को पूर्ण करती है। ब्रह्म शक्तिमान और सर्वज्ञ होने पर भी प्रकृति के द्वारा जगत् की रचना करता है, यह कर्त्ता का लक्षण है। हाथ, पैर, वाणी आदि इन्द्रियाँ हैं, परन्तु ये चेतन की शक्ति के बिना कार्यों को नहीं पूर्ण करतीं। अतएव इन्द्रियों की क्रिया मन के संयोग से आत्मा की क्रिया है और चेतन की है। जड़ का प्रेरक चेतन होता है। आत्मा ज्ञानवान् होते हुए भी निद्रा में बिना करणों की क्रिया क्यों नहीं करता? उसी को सुषुप्ति

Scanned with CamScanner

कहते हैं, जब आप सो कर उठते हैं, तब अनुभव प्रकट होता है कि मैं बहुत आराम से सोया। यह अनुभव आत्मा को होता है। जिस अवस्था में मन इन्द्रियों सहित अपने मूल कारण में निस्तब्ध हो सो जाता है। चेतन आत्मा का ज्ञान नित्य है, जिससे इन्द्रियों से कार्यों के न होने पर भी वह अपनी स्वतन्त्र सत्ता का ज्ञान अपने में रखता है, यही चेतन और कर्ता का लक्षण है। अतएव ज्ञानवान् और कर्ता होने से ही आत्मा इन्द्रियों से अपने कार्यों को जगत् में करता है और जगत् के ज्ञानों और विषयों का सम्पादन मन के द्वारा इन्द्रियों से होता है। इसलिए आत्मा ज्ञानवान्, चेतन और स्वतन्त्र कर्त्ता है।

प्रश्न- *आप क्या कहे? भला ज्ञानवान बन्धन में कैसे पड़ सकता है?*

उत्तर- जीव स्वतन्त्र है, क्योंकि कर्त्ता स्वतन्त्र होता है और स्वतन्त्र वही होता है जो चेतन होता है। इच्छा की बाहुल्यता, स्वच्छन्दता होने से मोह में ग्रसित जीव उसके अनुकूल कार्य करने लगता है और मोह के आवरण में उसका ज्ञान ढँप जाता है। फिर वह मोहग्रसित हो उस मोहकता और सरलता में इन्द्रिय सुख का यापन करने लगता है। मोह के आवरण में ज्ञान का प्रकाश नहीं होता। आवरण टल जाने पर ही सच्चा ज्ञान प्रकट होता है। ज्ञानवान् होने से ही मोह का आवरण नष्ट हो जाता है और पवित्र आत्मज्ञान उदय होता है। अज्ञान से अल्पज्ञ होने के कारण बन्धन में पड़ता है एवं भोग-इच्छा के वशीभूत होकर ही नाना कर्म-प्रपंचों की प्राप्ति में प्रयत्नशील होने लगता है। ज्ञान होते हुए भी प्राकृतिक भोगों की इच्छा आत्मा के बन्धन का कारण होती है। आत्मा भोगों की इच्छा से प्रकृति का अभिमानी हो जाता है और वासना के बन्धन में ग्रसित रहता है। प्रकृति बन्धन है, जिसकी विमुक्ति में

Scanned with CamScanner

ही वह सुख और सच्ची शान्ति की प्राप्ति करता है। अतएव प्राकृतिक भोगों की इच्छा बन्धन का कारण हो गई, न कि ज्ञान से आत्मा बन्धन में हुआ। ज्ञानवान् होने से ही बन्धन की निवृत्ति और मायिक सुखों के त्याग की भावना आत्मा में उदय होती है। इसके अतिरिक्त सुख की इच्छा और भोग की वासना इतनी तीव्र हो जाती है और आत्मा नाना कर्मों या सुखों की प्राप्ति में प्रयत्नशील। इससे स्पष्ट हो जाता है कि वह इन सुखों से सन्तुष्ट नहीं हो रहा है। उसे विशेष किसी सुख की इच्छा है, जिसे बार-बार भोगने पर भी उसे वह नहीं प्राप्त कर सका है। एक के बाद दूसरे सुख की इच्छा, फिर उसका त्याग एवं फिर एक तीसरे सुख की प्राप्ति- ये बार-बार होने वाले प्राकृतिक कर्म, व्यवहार आत्मा के नित्य सुख की इच्छा रहने के द्योतक हैं। अतएव आत्मा ज्ञानवान् होते हुए अल्पज्ञ होने से प्राकृतिक भोगों की ओर दौड़ता है, दुःखी होता है। सर्वज्ञ तो ईश्वर है, जीव नहीं। केवल अपने आत्मस्वरूप के ज्ञान की कूटस्थता सदैव इसमें बनी रहती है। परन्तु वह ज्ञान प्रकृति से ढँपा रहता है। अतएव सच्चे सुख के इच्छुक आत्मज्ञान को प्राप्त कर नित्य सुख की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते हैं और साधन, पुरुषार्थ के प्रभाव से आत्मा के सच्ची स्थिति को प्राप्त कर निःश्रेयस के आनन्द का उपभोग करते हैं। सर्वज्ञ महाचेतन ईश्वर आत्मा से भिन्न पदार्थ है, जिसकी खोज में सृष्टि के आदि से ही अनेक ऋषि, ज्ञानी, सन्त, विद्वान् अपने साधन, सत्कर्मों और प्रयत्नों को लगाते हैं और उसकी प्राप्ति में आगे बढ़कर सच्चे सुख की प्राप्ति करते हैं।

प्रश्न- बुद्धि तो है ही फिर आत्मा के अंकुश का क्या अभिप्राय है?

उत्तर- बुद्धि जड़ पदार्थ है। आत्मा की प्रेरणा से बुद्धि में ग्रहण

Scanned with CamScanner

शक्ति प्रकट होती है। भोजन और आहार-विहार, संयम का प्रभाव बुद्धि पर पड़ता है। बाल, युवा और वृद्धावस्था में बुद्धि में विषमता होती है। अतएव बुद्धि प्रकृति का कार्य होने से जड़ है। शुद्ध बुद्धि होने के लिए उचित विचार, सत्संग, तप, उत्तम कर्म, प्राणायाम आदि आध्यात्मिक साधन हैं। जिस प्रकार चिन्तन-मनन होता है, उसी के अनुसार बुद्धि होती है। प्राकृतिक पदार्थ प्रकृति के संयोग से विकसित होता है। अंकुश देने वाला चेतन और ज्ञानवान् होता है। अतएव प्रकृति का संचालक चेतन ही होता है और है। इस अभिप्राय से अंकुश जो सन्तवाणी में बतलाया गया है वह सत्य तथा आवश्यक है। बुद्धि का प्रयोग आत्मा के अंकुश से ही होता है। स्वतन्त्र बुद्धि भी कार्य नहीं करती। कभी बुद्धि के थक जाने पर या उन्माद अवस्था में उससे उचित और आवश्यक कार्य कोई नहीं करा सकता है। बुद्धि और मन के लय होने पर भी आत्मा अपने स्थिति में विराजमान रहता है। आत्मा के द्वारा अनेक जन्म, संस्कारों का ज्ञान चित्त में बना रहता है, परन्तु संसार में देखा जाता है कि प्राणियों का संयम, नियम, आचरण, विचार एकरूप से सदैव नहीं रहता। इस भाव पर बुद्धि पर क्या भरोसा किया जाय, जबकि यह समय और उचित कार्यों का ज्ञान नहीं रखती। अतएव यथार्थज्ञान वाली प्रज्ञा तत्त्वदर्शी या मनस्वी की ही होती है। प्राकृतिक कार्यों के करने के लिए जिस अवस्था में चित्त का जैसा संस्कार, व्यवहार है उसके अनुकूल बुद्धि कार्य करती है। चोर को स्तेय कर्म की बुद्धि होती है और एक वैज्ञानिक को परमाणुओं के द्वारा एक महान् शक्तिशाली शस्त्र बनाने की बुद्धि होती है। एक विद्वान् की बुद्धि एवं एक नीतिज्ञ, कर्म कुशल या सैनिक कर्मचारी की बुद्धियों में अनेकानेक अन्तर

Scanned with CamScanner

दीख पड़ते हैं। इसलिए व्यक्ति के संस्कार, गुण, स्वभाव के अनुकूल ही बुद्धि का व्यवहार होता है। यदि बुद्धि सबकी बराबर होती और सबमें ज्ञान एक-सा रहता तो संसार में अविवेकी और यथार्थ कर्त्तव्य से हीन कोई नहीं हो सकता–

जल प्रमाणे माछली, कुल प्रमाणे बुद्धि।

जाको जैसा गुरु मिलै, ताको तैसी बुद्धि।।

इस प्रकार कर्म, गुण, स्वभाव के भेद से बुद्धि की विभिन्नता देखी जाती है। अतएव सद्ज्ञान का साधन बुद्धि नहीं बल्कि आत्मा है। अतएव आत्मा ही मतवाला हाथी-रूपी मन का अंकुश बतलाया गया है। गुरु मिलने पर प्राकृतिक बुद्धि ही अपने वश में होकर अनुकूल कार्य करती है और सच्चा विवेक रखती है। प्राकृतिक कार्यों के लिए प्राकृतिक करण ही निर्माण हुए हैं। परन्तु उनका प्रेरक चेतन और ज्ञानवान् होता है। सत्संग विवेक और योगाभ्यास द्वारा प्राकृतिक बल पूर्ण होते हैं। और बुद्धि का सच्चा उपयोग होता है। अतएव बुद्धि के विकास के लिए आध्यात्मिक योग-साधन की अत्यन्त आवश्यकता है और बुद्धि के विकास की क्रिया प्रत्येक क्षेत्र के व्यक्तियों को निश्चय करनी चाहिए।

प्रश्न- ***सृष्टि-प्रारम्भ में मुक्त तथा बद्ध सर्व जीव प्रकट होते हैं, क्या मुक्त जीवों को भी और जीवों की भाँति सृष्टिचक्र के नियम में आना पड़ता है?***

उत्तर- सृष्टि और प्रलय दोनों प्रकृति के धर्म हैं। सृष्टि की क्रिया ब्रह्म के एक पाद में होती है और शुद्ध चेतन तीन पाद अमृत है। जहाँ जन्म-मरण और कर्म-प्रकृति संसार नहीं वहीं मोक्ष है। अतएव मुक्त, बद्ध जीवों की भाँति सृष्टि के प्रारम्भ में नहीं प्रकट होते। उनसे सृष्टि के होने और प्रलय से कोई

सम्बन्ध नहीं। मुक्ति में मुक्त जीव और बन्धन सृष्टि में बद्ध जीव रहते हैं। स्वर्वेद सिद्धान्त का परिपूर्ण ग्रन्थ है और चारों वेद-भाष्य प्रमाणित हैं, इन्हीं के अनुकूल वचन सत्य और संशयरहित हैं। इन्हीं के वचनों पर सत्य सिद्धान्त की मान्यता करनी चाहिए। *आप्तोपदेशः शब्दः* यही वैदिक आर्ष सद्ग्रन्थों का प्रमाण है।

प्रश्न- निःअक्षर से अक्षर और मन की उत्पत्ति कैसे मानी गई है?

उत्तर- निःअक्षर सबका मूल प्रकाश है, उसी के प्रकाश से और आधार पर अक्षर द्वारा समस्त पदार्थों की रचना कही गयी है। उसी के प्रकाश में अक्षर प्रकट होकर सृष्टि की क्रिया प्रारम्भ करता है। प्रकट और गुप्त दोनों रूपों से अक्षर अपने स्वरूप से नित्य चेतन है। वह प्राकृतिक पदार्थ की तरह उत्पन्न नहीं होता। जगत् की क्रिया का संचालन करने वाला अक्षर है और जब अक्षर अपने मूलस्रोत में गुप्त हो गया, तब परमाणुओं की गति निष्पन्द होकर मूल रूप में आकर अपने में विलीन हो गई। इसी को प्रलय कहते हैं। मन में सारी सृष्टि समाई हुई है। मन के ही सम्बन्ध से आत्मा को दुःख या प्राकृतिक सुखों की प्राप्ति होती है। मन के विलय होने पर यह संसारचक्र भासमान नहीं होता और योगी अपने विशुद्ध देश में स्वच्छन्द गमन करता है। अतएव मन का उद्गम स्थान अक्षर है और उसी में लय कर देने पर मन की सारी क्रिया या जगत् का उपद्रव बन्द हो जाता है। इसी भाव पर अक्षर से मन का प्रादुर्भाव होता है, कहा गया है। इसके लिये स्वर्वेद देखें। स्वर्वेद के अनुकूल वचन प्रमाण हैं। स्वर्वेद ही सिद्धान्त का ग्रन्थ है जिसमें समस्त विषयों का पूर्ण निरूपण सरल और सुबोध रूप से किया गया है।

Scanned with CamScanner

प्रश्न- सोहं को अजपा कहते हैं परन्तु स्वर्वेद में अक्षर को अजपा कहा गया है, इसका क्या अभिप्राय है?

उत्तर- ब्रह्माण्डी पंच शब्दों में सोहं है। सोहं शब्द प्राकृतिक है। जो प्रकृति प्रदेश में अक्षर सन्निधि से मन, प्राण के मण्डल में नीचे ब्रह्माण्ड में होता है। आज के साधक श्वाँसा में सोहं शब्द की कल्पना करते हैं। परन्तु उनको पता नहीं कि सोहं का आदि और मूल स्थान कहाँ है और सोहं शब्द ब्रह्माण्ड में कैसे और कहाँ होता है? जब अजपा है, तव श्वाँसा के साथ जपने की क्या आवश्यकता है। गुरुविहीन साधक बाहरी सोहं की कल्पना को ही अजपा मानते हैं। किन्तु ब्रह्माण्डी सोहं ही अजपा है। प्राकृतिक वाह्य भूमि से सोहं को अजपा कहा गया है और सभी ब्रह्माण्डी शब्द अपने प्रदेश में साधकों को गुरुगम्य में अनुभव होते हैं, किन्तु फिर भी जो प्राकृतिक है और दूसरे सम्बन्ध और प्रयोग से जिसका आरम्भ होता है वह अजपा कैसे हो सकता है? जो सहज या स्वाभाविक है वही अजपा है, जहाँ वाणी और मन से सुमिरन करने की आवश्यकता नहीं। अतः अक्षर इन पञ्च शब्दों का भी आदि कारण और मूलाधार है। इस तथ्य पर प्राकृतिक सोहं को भी चेतना देने वाला और प्रकाशक होने से एक प्रदेशव्यापी सहज शब्द को स्वर्वेद में अजपा कहा गया है। जो जपा नहीं जा सके, जहाँ वाणी नहीं पहुँच सके, जो स्वाभाविक और सत्य अनुभव है वही अजपा है। ब्रह्माण्डी अजपा को सोहं कहते हैं। परन्तु यह अजपा जिसे अक्षर कहते हैं। सोहं का भी कारण और आदि है। इसी के सुमिरन से आत्मा में आन्तरिक शक्ति का जागरण और ऊर्ध्व में उद्गम होता है। इसी को योगिजन प्राप्त कर निःशब्द परम पद में तल्लीन हो परमानन्द, विमुक्ति के महासुख को

Scanned with CamScanner

प्राप्त कर कृतकृत्य हो जाते हैं। जो संयोग और बाहरी धारणा से मन के मण्डल में प्रकट होता है। वह शब्द अजपा नहीं बल्कि जो सहज स्वाभाविक गति में प्रकट हो रहा है वही अजपा है। इसी आशय पर स्वर्वेद में अक्षर को अजपा कहा गया है।

प्रश्न- बिना आत्मा की प्रेरणा से योगियों द्वारा इन्द्रियों से कर्म कैसे हो सकते हैं, यदि प्रेरणा से होते हैं तब कर्मों का बन्धन क्यों नहीं और जब प्रेरणा नहीं तो कर्म कैसे?

उत्तर- बिना आत्मा के द्वारा शरीर में कोई क्रिया नहीं होती, वह योगी हो या बद्ध जीव। स्वतन्त्र या परतन्त्र दोनों अवस्थाओं में जीव से क्रिया होती है। जहाँ क्रिया नहीं वहाँ जीवन या गति नहीं हो सकती। बिना चेतन के प्रकाश से जड़ में क्रिया नहीं होती। आत्मा चेतन है और इन्द्रियाँ प्रकृति के कार्य होने से जड़ हैं। जड़ में गति या स्वयं क्रिया बिना चेतन के संयोग से नहीं होती। बद्ध जीव प्रकृति के विषयों से वशीभूत होकर अपने कर्म-वासना, संस्कार से ग्रसित होकर प्रकृति-नियम से कर्म करते हैं। परन्तु योगी योगाभ्यास द्वारा प्रकृति पर विजय प्राप्त करके अपने अनुकूल मन, इन्द्रियों का संचालन कर सबका शासक होता है। जो पराधीन है वह शासक नहीं हो सकता, न कर्म ही कर सकता है। बद्ध जीव परवश होकर कर्म करते हैं और प्रकृति उन्हें विवश कराकर कर्म के लिए बद्धमान करती है, किन्तु योगी अपने कर्मों का स्वतन्त्र कर्ता होता है और उसका प्रेरक प्रकृति नहीं होती। जहाँ कर्म ही नहीं वहाँ बन्धन कैसे हो सकता है? कर्म करने वाला स्वतन्त्र होता है, अधीन नहीं। यही कर्त्ता का लक्षण है। इस सिद्धान्त पर संसारी जीव कभी कर्म आत्मा से नहीं करते, वे तो प्रकृति के बन्धन में रहकर

Scanned with CamScanner

प्रकृति के आज्ञा के अनुकूल कर्म और उसका उपभोग करते हैं, किन्तु योगियों में यह बात नहीं। वह तो स्वतन्त्र प्रकृति पर शासन करने वाले मनस्वी सारे देह-संघात के स्वामी होते हैं। अतएव यथार्थ में कर्मों का कर्त्ता योगी है। संसारिक विषय, मोह-बन्धन में बँधकर कर्म करने वाला अज्ञानी व्यक्ति नहीं। योगी एक काल में अपने संकल्प, प्रभाव से अनेक कार्यों को पूरा कर सकता है और करता है। इन्द्रिय आदिक के कर्म उसके सन्निधि और आवश्यकता के अनुकूल प्रकृति स्वयं कर लेती है। स्वयं करने का अभिप्राय यह नहीं कि आत्मा के बिना क्रिया हुई। परन्तु वह प्रकृति की क्रिया अपने आत्मा के शुद्ध प्रेरणा से होती है। कर्मबद्ध संसार के जीवों की भाँति नहीं, यही अन्तर है। इन्हीं योगियों के कर्म को अकर्म कहा गया है। कर्त्ता के बिना क्रिया नहीं रह सकती, क्योंकि चेतन में स्वाभाविक, सहज चेष्टा या व्यवहार है। योगियों को समाधि-अवस्था में जब मन, इन्द्रियाँ अपने मूल कारण प्रकृति में स्तब्ध हो लीन हो जाती हैं, उस अवस्था में ही ईश्वरीय प्रकाश में शुद्ध आत्मा के ज्ञानशक्ति संकल्प से सारे देहसंघात की क्रिया पूर्णरूप से होती है। जिससे शरीर स्थिर, तेजपूर्ण और प्रकाशमान हो सुशोभित रहता है, जैसे सारे जगत् का संचालक गति या प्रेरणा देने वाला ईश्वर जगत् का नियामक और कर्त्ता होकर भी भिन्न चेतन, असंग है, उसमें किसी प्रकार का मलदोष या आवरण नहीं आता। जैसे आकाश व्यापक होकर भी सारे जगत् की क्रिया अवकाश देकर स्वच्छन्द और असङ्ग रहता है, उसी प्रकार योगीजन सारे देह-संघात की क्रिया या प्रेरणा को देकर इन कर्मों का कर्ता और साक्षी होकर ब्रह्मानन्द में निमग्न रहते हैं। यही विशुद्ध योग का रहस्य और उसकी महिमा है। जैसे भूमि का कींच आकाश

को गंदला नहीं कर सकता, उसी प्रकार मन, इन्द्रियों से जगत् में होने वाले कर्म योगी के विशुद्ध प्रकाश को नहीं ढाँप सकते। योगीजन इसी शरीर में रहकर नित्य नैमित्तिक सर्व कर्मों को करते हुए अपने स्वच्छन्द ब्रह्मानन्द में निमग्न हो जगत् का संचालन या जगत् का व्यवहार करते हैं। स्ववश और परवश दो कर्म होते हैं। संसारी जीवों के कर्म परवश अवस्था में होते हैं। और स्ववश कर्म योगियों को अपनी आत्मा की विशुद्ध अवस्था में होते हैं ऐसे योगियों के कर्म-बन्धन वासना के अनुकूल नहीं होते। ज्ञान-अग्नि से जलकर नष्ट हुए कर्म फिर प्रकट नहीं होते, उस अवस्था में स्वाभाविक आत्मा की प्रेरणा से उचित और उपादेय कर्म जीवन्मुक्त आत्मायें करती हैं और वह कर्म बन्धन का हेतु नहीं। कर्त्ता सदैव कर्म करता है, परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि वह कर्मवश ही कर्म का उपार्जन करता है। कर्म संसारी जीव करते हैं, परन्तु योगीजन जो कर्म करते हैं वे संसार के लिए कर्म हैं और विदेह अवस्था या असंग अवस्था के कर्म हैं। वे भोग बन्धन के हेतु नहीं, क्योंकि वे कर्म स्वतन्त्र और स्वाभाविक होते हैं। इन्हीं कर्मों को अकर्म कहते हैं, क्योंकि वह कर्म नहीं के बराबर अर्थात् अपने लिए नहीं हैं। अतः वह कर्म बन्धन का हेतु नहीं। वह निर्लिप्त और असंग कर्म है। प्रकृति में ही कर्म होता है, आत्मा में नहीं। प्रेरणा आत्मा से ही होती है। बिना सन्निधि या आत्मा के संयोग से जड़ जगत् की क्रिया नहीं होती। जड़ शरीर को चलाने वाला आत्मा है। आत्मा इन्द्रियों के द्वारा जगत् के कार्यों को करता है। परन्तु योगी अपनी शुद्ध प्रेरणा से प्रकृति की अधीनस्थ शक्तियों को जगत् के उपयोगी कार्यों में व्यर्थ कर संसार का कल्याण करता है। यही उसकी महत्ता है जो संसारी, कर्मबद्ध जीवों

Scanned with CamScanner

के कर्मों द्वारा नहीं हो सकती। अतः प्रकृति के अधीनस्थ हुए कर्म बन्धन के हेतु हैं। स्वतन्त्र और शुद्ध आत्मा से सद्विवेकपूर्ण कर्म बन्धन के हेतु नहीं हो सकते, न इस अवस्था में हुए व्यवहार कर्म की संज्ञा में आ ही सकते हैं। इसलिए योगियों के कर्म अकर्म हैं अर्थात् कर्म नहीं हैं। यही गीता में कहा गया है। सचमुच में जीवन्मुक्त पुरुष ही उचित और उपादेय कर्मों को यथार्थरूप में करता है एवं कर्म का निरूपण करता है। अज्ञान-अवस्था में हुए कर्म बन्धन के हेतु होते हैं, और न इन कर्मों का सदुपयोग ही होता है। शुद्ध, सात्त्विक, निष्काम कर्म भी विवेकी करता है।

जो कर्म और आत्मा के व्यवहारगति का ज्ञान करते हुए योगाभ्यास द्वारा आत्मा के प्रकाश में विचरण करता है। अतएव ज्ञान के प्रकाश में ही कर्म उपयुक्त होते हैं और पूर्ण फलदायक होते हैं। जहाँ सब कामनाओं की पूर्ति और सांसारिक वासनाओं की निवृत्ति, परमानन्द की प्राप्ति हो जाती है। उसी निष्काम अवस्था में निष्काम कर्म होंगे और उनके फल प्राकृतिक नियम, संस्कार, वासना के अनुकूल नहीं होंगे। इससे इतर जितने भी कर्मनिष्ठ प्रकृति जगत् में कर्मों का सम्पादन या प्रयोग करते हैं सभी फलमय आशा, वासना से युक्त होते हैं। वे निष्काम कर्म नहीं कहे जा सकते। निष्काम कर्म या विशुद्ध कर्म जहाँ बन्धन और राग का सम्बन्ध नहीं, वहीं होते हैं और वह कर्म असंग, निर्लेप अवस्था का जीवन निष्काम कर्मों द्वारा जगत् के जीवों को उद्धार करने में समर्थ होता है। अतएव यथार्थ कर्म को करने वाले विवेकी योगाभ्यास द्वारा अन्तःकरण और वृत्तियों के व्यापारों से उपरम होकर शुद्धज्ञान के प्रकाश में कर्म करते हैं और जीवन्मुक्ति के परम प्रकाश आनन्द में विचरण कर मनोवांछित फलों की प्राप्ति कर निष्काम

Scanned with CamScanner

निःसंकल्प हो परमानन्द में निमग्न हो जाते हैं। यही निष्काम, शुद्ध आत्मा से कर्म करने वाले सत्य संकल्पवान् महान् आत्माओं की महिमा है।

प्रश्न- यम नाम के वायु द्वारा जीव का शरीर से गमन कहा गया है, परन्तु दस प्रकार के वायुओं में इसका नाम नहीं कहा गया है?

उत्तर- शरीर के अन्दर दसों प्राण काम करते हैं और इनके दस प्रकार के काम इस शरीर में होते हैं। ये शरीर की रक्षा के हेतु हैं और इनके भिन्न-भिन्न काम हैं। परन्तु यम वायु द्वारा जीवात्मा इस शरीर को छोड़कर अन्तरिक्ष में जाता है, जहाँ से ईश्वरीय नियम के अनुकूल उचित कर्मोपभोग के लिये न्यायवश जल एवं वीर्य से स्त्री के गर्भ द्वारा बाहर जगत् में प्रकट होता है। वायु के ८५ भेद हैं जिसे इसके वैज्ञानिक जानते हैं। 'यम' वायु को कहते हैं और धर्मराज ईश्वर को। इस वायु का प्रयोग या काम मृत्यु में होता है, जो जीव को इस शरीर से निकालने के समय प्रकट होता है और इस शरीर से ज़ीव का गमन होता है। इस प्रकार के प्राणवायुओं में इसकी गणना नहीं है। ये वायु जीवन के संचार और शरीर की रक्षा के हेतु हैं। यमवायु द्वारा शरीर से आत्मा का गमन होकर अन्तरिक्ष में प्रवेश होता है। तत्त्वबोध में इन दस प्राणवायुओं का वर्णन पढ़ें।

बालखिल्य स्वतन्त्रदेव का प्रश्न- पिताजी आपको सबलोग आचार्य क्यों कहते हैं?

उत्तर- जिसका सुन्दर, प्रकाशमान आचरण है, वही आचार्य है। जिस आत्मा, अन्तरात्मा के अन्दर गति, चेतन रस ब्रह्मानन्द का पान होता है उसे ही आचार्य कहते हैं। जिसकी मन, बुद्धि, वाणी, आत्मा एक विशेष प्रकाशमान केन्द्र से सदैव प्रकाशित

रहती है, उस सोमरस-उपभोगी आत्मा को आचार्य कहते हैं। सुन्दर आचरण होकर भी जो ब्रह्मरस, परमानन्द महान् सुखरहित है वह आचार्य नहीं हो सकता। जिसकी आत्मा में ब्रह्मामृत चेतन प्रवाह सदैव प्रवाहित होता है, उस जीवन्मुक्त योगी को आचार्य कहते हैं। ब्रह्मविद्या के अनुभवतत्त्व जिसके सामने प्रत्यक्ष हों उस अनुभवद्रष्टा, मेधावी पुरुष को आचार्य कहते हैं। ब्रह्मनिष्ठ योगी ही ब्रह्मविद्या का आचार्य होता है। परा, अपरा दोनों विद्याओं के गुरु आचार्य होते हैं। माता, पिता और आचार्य को देव कहते हैं। दिव्य गुणवान् प्रतिभाशाली आचार्य को देव कहते हैं। जिसके जीवन में प्रकाश है और वह प्रकाश दूसरों को देता है, इसलिये आचार्य 'देव' हैं। असुर दूसरे का धन, सुख ले लेते हैं या नष्ट कर देते हैं, परन्तु देवताजन दूसरों को जीवन, ज्ञान और आनन्द को प्रदान करते हैं, इसलिये आचार्य को 'देव' भी कहते हैं। आचार्य को ही सद्गुरु भी कहते हैं। प्राचीन काल में ब्रह्मविद्या के आचार्य को महर्षि, परमऋषि कहा जाता था, परन्तु आज अनेक गुरुओं के हो जाने से ब्रह्मविद्या-प्रचारक जीवन्मुक्त-योगी को सद्गुरु कहते हैं, जो ब्रह्मविद्या का आचार्य है वही सद्गुरु है। सद्गुरु और आचार्य दोनों के भाव एक होते हैं।

प्रश्न- आचार्य की उपाधि कैसे मिलती है?

उत्तर- श्रुतज्ञानप्रवाही ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु द्वारा ही आचार्यपद की प्राप्ति होती है। जब सद्गुरु की ज्ञानधारा उत्तराधिकारी वर्तमान सद्गुरु में प्रकट, प्रवाहित हो जाती है, तब आचार्यपद प्राप्त होता है। इसी को परम्परागुरु कहते हैं। प्राचीनकाल में ब्रह्मनिष्ठ ऋषियों की परम्परा में चलती थी। सभी ऋषि ब्रह्मनिष्ठ गुरुपद को नहीं प्राप्त करते थे। इसीलिये ब्रह्मज्ञानी ऋषियों की वंशपरम्परा का वर्णन उपनिषद् में पाया जाता है। इसी को गीता में

योगिकुल कहा गया है। उत्तम योगविद्या की संस्कारी आत्मायें योगिकुल में प्रकट होती हैं।

प्रश्न- गुरुपद कैसे प्राप्त होता है?

उत्तर- जब सद्गुरु अपना ज्ञानबल उत्तराधिकारी आत्मा में प्रदान कर देते हैं, तब उस सत्यपुरुष की दिव्य चेतन दृष्टि खुल जाती है, उस आत्मा को सद्गुरुपद प्राप्त होता है। मनमुखी सद्गुरु कोई नहीं होता। सद्गुरु सद्गुरु बनाते हैं। सद्गुरु की ज्ञानधारा जब उत्तराधिकारी में प्रवाहित होगी, तभी सद्गुरुपद प्राप्त होगा। अतएव सद्गुरु ही सद्गुरुपद प्रदान करते हैं और अपनी ज्ञानशक्ति को प्रदान कर सद्गुरु का पद पूर्ण करते हैं।

प्रश्न- राजर्षि भुवनेश्वर जी का प्रश्न-
प्राण, मन में भेद क्या है और इससे आत्मा का सम्बन्ध क्या है?

उत्तर- प्रकृति-मण्डल में आत्मा के दो साधन हैं। इन दोनों करणों द्वारा आत्मा जगत् की क्रिया को करता है। प्राण द्वारा शरीर के सारे अंग-प्रत्यंग अपना-अपना कार्य करते हैं। प्राणी से ही शरीर धारण होता है। प्राण-संचालन अक्षर के सम्बन्ध से आत्मा द्वारा होता है। शरीर के अन्दर सभी चक्र, नल, प्राण, सजीवन अक्षर द्वारा क्रियावान् होते हैं। प्राण का आधार अक्षरब्रह्म है। शरीर के अन्दर दस प्राण अपने-अपने स्थानों पर शरीर की क्रियाओं को करते हैं। प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान-- ये प्राण हैं और कूर्म, धनञ्जय, कृकिल, देवदत्त और नाग ये पाँच उपप्राण हैं। इन्हीं के द्वारा शरीर में जीवनबल प्राप्त होता है। प्राणों के विकृत होने से ही शरीर के अन्दर अनेक रोग-व्याधियों का उत्पात होने लगता है। शरीर के अन्दर प्राण की समस्त क्रियाओं को शुद्ध रखने के लिये यौगिक आसन, प्राणायाम, मुद्रा आदि एवं षट्क्रिया

नेती, धौति, नौली, बस्ती, त्राटक, कपालभाति हैं। इनके द्वारा प्राण शुद्ध रहता है। आहार-विहार संयम से रखने पर आमाशय, यकृत, प्लीहा आदि अच्छी तरह से अपना कार्य करते हैं। प्राणविद्या के ज्ञाता प्राणविज्ञान से शरीर के अंग-प्रत्यंगों में शक्ति प्रकट कर अनेक कठिन और बलशाली कार्य करते हैं। षट्क्रिया और शरीर के विकृत तत्त्व जब शरीर से निकल जाते हैं, तब प्राणायाम द्वारा फेफड़ा और स्नायुओं में शक्ति मिलती है। स्नेहन, विरेचन, वमन और प्रस्वेदन द्वारा भी शरीर के संचित विकृत निकल जाते हैं। इसलिये प्राणशुद्धि के लिये षट्क्रिया और चारों विधान बहुत लाभकारी हैं। गजकरणी, शङ्ख-प्रच्छालन द्वारा भी आमाशय की शुद्धि होती है। जो बस्ती कर्म जानते हैं, उन्हें शङ्ख-प्रच्छालन की आवश्यकता नहीं होती। इसलिये प्राण द्वारा शरीर की रक्षा होती है। प्राण के बाद मन का स्थान सबसे श्रेष्ठ है। मन द्वारा ही इन्द्रियों में क्रिया होती है। इन्द्रियों का संचालक मन है, प्रकृति में मन की महान् शक्ति है। मन द्वारा आत्मा अपने सारे इन्द्रियों से क्रिया-व्यापार करके प्रकृति के दुःख और सुख का अनुभव करता है। मन से रहित हो जाने पर आत्मा पंगु हो जाता है। प्रकृति का कोई कार्य मन के बिना नहीं हो सकता। इन्द्रियों का राजा मन है। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ मन के द्वारा अपनी क्रियाओं को करती हैं। मन जड़ और चेतन दोनों नहीं है, जड़ इसलिए नहीं है कि वह इन्द्रियों से कार्य करता है और चेतन इसलिए नहीं है कि सुषुप्ति अवस्था में अपने कारण में लीन हो जाता है। सुषुप्ति में आत्मा के साथ मन हृदय में निवास करता है, अतएव मन को दार्शनिकजनों ने आगन्तुक चेतन कहकर मन का लक्षण किया है। मन और पवन ये दोनों आत्मा के बाह्य करण हैं। इन्हीं

के द्वारा प्रकृति के अन्दर आत्मा अपने समस्त कर्मों को करता है। आत्मा इनसे भिन्न इनका प्रकाशक चेतन स्वरूप है। आत्मा के ये दोनों प्रकृति करण हैं। आत्मा इन करणों द्वारा जगत् के समस्त व्यवहारों को करता है।

प्रश्न- साधन के मार्ग तो अनेक हैं, उन सभी मार्गों से परब्रह्म-प्राप्ति का साधन हो सकता है?

उत्तर- प्राकृतिक योग में अनेक योग बन गये हैं। प्रकृति-आधार में प्राण, मन, इन्द्रिय, अनहद और पंच शब्दों का साधन होता है। साधनों की क्रम गति है। जो योग का वेत्ता है इनके साधन और साध्यफल अर्थात् उद्देश्य को जानता है। प्राकृतिक योगों द्वारा जो फल प्राप्त होता है वह प्राकृतिक है और अन्तर जगत् में पहुँचने का एक आधार है, परन्तु इन साधनों को मार्ग नहीं कह सकते। मार्ग तो एक ही है, जिसे विहङ्गम योग कहते हैं। परन्तु योग की अनेक भूमियों में अनेक योग हैं। राजयोग और उनके अनेक साधन, हठयोग इसकी क्रियाओं, भेद-साधन, इसी प्रकार मन्त्रयोग और उसकी सिद्धि, फिर लययोग आदि-आदि अनेक योगों के नामकरण हैं। मार्ग जाने के रास्ते को कहते हैं। परब्रह्म-प्राप्ति का दूसरा कोई मार्ग नहीं है। केवल एकमात्र विहंगम योग है। यही महापथ और देवयान मार्ग है। योग की पाँच भूमियों के अन्दर सभी योग और उसके परिणाम आ जाते हैं। जैसे शरीर में अन्न, जल के लिए एक ही मार्ग प्रस्तुत है, गन्ध के लिए घ्राण और शब्द के लिए श्रोत्र है, उसी प्रकार ब्रह्म-प्राप्ति के लिए तेजोमय परमपुरुष की उपलब्धि के लिये एक ही सन्मार्ग है। न जानने से ज्ञान की अबोध अवस्था में इन योगों को मार्ग जान साधक अन्धकार में पड़े रहते हैं। सीढ़ी, दर्जा मार्ग नहीं होता। एक, दो, तीन ये संख्या क्रमशः आगे बढ़ती जाती

हैं, उसी प्रकार इन्द्रियाँ जगत् में सूक्ष्म होने पर आत्मिक शक्ति स्वाभाविक क्रमशः आगे बढ़ती जाती है और अन्त में लक्ष्य को प्राप्त करती है। मैट्रिक, बी० ए०, एम० ए०, अंग्रेजी शिक्षा के मार्ग नहीं हैं, बल्कि शिक्षा की कोटियाँ हैं। इन कोटियों के द्वारा विद्यार्थी उत्तरोत्तर अपनी शिक्षा का विकास, ज्ञान, शिक्षा की सर्वोच्च कोटि को प्राप्त करता है। इसी प्रकार अध्यात्म ज्ञान के ये उक्त सारे योग क्रमिक कोटि-भेद के ज्ञान हैं, कोई मार्ग नहीं जिनके द्वारा साधक अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त कर सके। यम, नियम, आसन, प्राणायाम आदि योग के आठ अंग हैं। ये आठ अंग योग के भिन्न-भिन्न मार्ग नहीं हैं। कोई साधक कहे कि प्राणायाम, कुम्भक द्वारा भजन-उपासना करता हूँ, यह एक मार्ग है, परन्तु आध्यात्मिक तत्त्वज्ञान ऐसा नहीं बतलाता है। अतएव जितने भी साधन हैं, वे अपनी भूमि और आधार पर प्रकृति क्षेत्र में चलते हैं। राजयोग, हठयोग, लययोग एवं मुद्राओं के सभी साधन एक मण्डल और क्षेत्र के अन्दर चलते हैं और ये एक दूसरे में मिल उसके पूरक होते हैं। प्राकृतिक शक्तियों का उत्थान भी आवश्यक है। शरीर, मन, प्राण की शक्ति बलवान् और तेज रहे इसके लिये योग-साधन अत्यन्त आवश्यक है। परन्तु भक्ति, मुक्ति का यह कोई साधन नहीं। जप, तप, तीर्थ, व्रत या भौतिक सिद्धियाँ सभी प्राकृतिक हैं। इनके सारे साधन और लक्षण सिद्धि प्राकृतिक, नश्वर हैं। परन्तु इनका त्याज्य और निषेध नहीं हो सकता, क्योंकि जीवन को क्रमशः बढ़ाने की सबसे सरल और स्पष्ट वैदिक शास्त्रों और स्मृतियों में ये बताये गये हैं। कोई व्यक्ति शीघ्र किसी लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता। उसके बढ़ने के लिए कोई आधार या साधन प्रारम्भ में होना चाहिए। इसी हेतु प्रकृति के अन्दर होने वाले सारे

साधन अपने स्थान पर उचित और सम्मानित हैं। इस प्रकार क्रमशः योगाङ्गों के साधनों द्वारा आगे बढ़ने पर ब्रह्मविद्या योगमार्ग के विशुद्ध पथ में चलने पर जीवात्मा को सच्ची शान्ति और परम आनन्द की प्राप्ति होती है। योग की पाँच भूमियाँ हैं, जो ब्रह्मविद्या के आचार्य द्वारा होती हैं। चतुष्टय साधन सम्पन्न जिज्ञासु क्रमशः इन भूमियों को प्राप्त करके परम लक्ष्य को प्राप्त करता है। ईश्वरप्राप्ति का मार्ग योग है और वह योग क्रमशः प्रकृति जगत् से उपरम होने पर शुद्ध आत्मा के पवित्र प्रकाश में प्रकट होकर परमब्रह्म की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करता है। प्रकृति के असंग अवस्था में ही शुद्ध चेतन की विशुद्ध अवस्था में योग का अनुभव और परमपथ की प्राप्ति हो, परमानन्द की प्राप्ति से जीवन्मुक्ति, परम निर्वाण की प्राप्ति होती है। आत्मा की शुद्ध अवस्था चेतन और पवित्र है। चेतन साधन से वह चेतन परब्रह्म प्राप्त होता है। जड़ करणों के द्वारा जड़ शक्तियाँ प्रकट होती हैं। प्राकृतिक सारे योग-साधन प्रकृति क्षेत्र में जड़ शक्तियों के आधार पर चलते हैं और उनका फल भी जड़ माया में होने से नश्वर और परिणामी है। चेतन-चेतन की भक्ति होती है। आत्मा चेतन और परब्रह्म चेतन है, इसलिये दो सजातीय वस्तुओं में स्वाभाविक सम्बन्ध स्थापित होता है। जड़ और चेतन का सम्बन्ध अस्वाभाविक है। विरुद्ध सम्बन्ध सदैव दुःखदायी और उन्नति में बाधक होता है। प्रकृति का सम्बन्ध अविवेक अवस्था में है। अविवेक से आत्मा प्रकृति-आधार का अवलम्बन करता है। शुद्ध ज्ञान की विस्मृति ही आत्मा के पतन का हेतु है। महर्षि कणाद ने अविवेक का कारण इन्द्रिय दोष और संस्कार बतलाया है। परन्तु यह भौतिक अविवेक का लक्षण है। आत्मा के शुद्ध स्वरूप में जब भ्रान्ति हो जाती है, उस अवस्था में इन्द्रियाँ

Scanned with CamScanner

और संस्कार दोष कहाँ रहते हैं? इसका उत्तर कणाद ने नहीं दिया। परन्तु यह दार्शनिक सिद्धान्त है कि आत्मा का पतन और शुद्ध स्वरूप की विस्मृति अविवेक से होती है। अविवेक का कारण अल्पज्ञता बतलायी गई है। अतएव प्रकृति-संघात से सम्बन्ध जब हो जाता है, तब आत्मा अपनी शक्ति और ऐश्वर्य को भूलकर नानापन दृश्य और भौतिक सुखों के प्रलोभन में अपने वास्तविक सुख को भूल जाता है। आगे इन भूल और अज्ञान की स्थिति इतनी दृढ़ और प्रबल हो जाती है, जिससे आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप से विस्मृत हो अनेक योनियों और दुःखों से पीड़ित होकर घोर पतनशील अवस्था को प्राप्त हो जाता है। इसलिये जड़ और चेतन का सम्बन्ध आत्मा के उत्थान का हेतु नहीं हो सकता। प्रकृति क्षेत्र के सारे साधन मन के आधार और प्राण के सम्बन्ध से होते हैं। अतएव ये प्राकृतिक साधन आत्मा के कल्याण-हेतु नहीं कहे जा सकते। प्रकृति भूमि में ही शून्य और परमाणु क्रम लोम-विलोम का ज्ञान होता है। कुम्भक करके प्राण को खींचना और ब्रह्माण्डी शक्ति को जाग्रत कर क्षर ज्योतियों का दर्शन करना यह सूक्ष्म प्रकृति का जाल है। इसे विशुद्ध पारदर्शी विहङ्गम योगी काल का देश और माया का कोट कहते हैं। विहङ्गम योगी में ये स्थितियाँ कौतूहल मात्र अज्ञान और नश्वर, क्षणिक समझ त्याग कर दी जाती हैं, वास्तविक सुख और पूर्ण शक्ति का प्रादुर्भाव प्रकृति के असंग अवस्था में शुद्ध आत्मप्रकाश उदय होने पर होता है। इस विषय को पूर्ण निर्भ्रान्त पारदर्शी विहंगम योगी और उनके सच्चे अनन्य जन जानते हैं। यह मार्मिक अनुभूति का विषय है।

अतएव चेतन विशुद्ध भक्ति विहंगम योग है, यही एक मार्ग है जिसके द्वारा ऋषि-महर्षि और जीवन्मुक्त योगी अपने आनन्द

का उपभोग करते हैं। दूसरा मार्ग और दूसरा साधन ब्रह्मप्राप्ति का नहीं है। सद्गुरु मिलने पर पूर्ण बोध और शान्ति प्राप्त होती है। चिरकाल सेवा-सत्संग करके परोक्ष-अपरोक्ष समस्त विषयों का बोध प्राप्त कर दीर्घ काल अभ्यास करने से सद्गुरु-दया अवलोकन और परम पुरुषार्थ द्वारा जीवन के उत्कृष्ट उद्देश्य की प्राप्ति और मानव-जीवन के परम लक्ष्य की प्राप्ति, परमानन्द की उपलब्धि होती है। अध्यात्मज्ञान का आधार ब्रह्मविद्या-मार्तण्ड सद्गुरु हैं। सद्गुरु द्वारा ही ब्रह्मविद्या के विशुद्ध प्रकाश में आत्मा की सच्ची कृतकृत्यता और परम निर्वाण की प्राप्ति होती है। जड़ और चेतन योग की दो भूमियाँ हैं। जड़ भूमि में प्राकृतिक योग चलते हैं और चेतन भूमि में विहंगम योग। आत्मा प्रकृति के अन्दर है इसलिये प्रकृति की भूमि से क्रमशः आगे बढ़कर चेतन भूमि की प्राप्ति करता है। चेतन भूमि आत्मा की विशुद्ध प्रकाश की भूमि है। जड़ भूमि में ही प्राकृतिक योगों की भूमियाँ हैं। परन्तु यह निश्चय है कि विशुद्ध चेतन मार्ग विहंगम योग के प्राप्त होने पर प्रकृति की स्वाभाविक शक्तियाँ एक आकर्षण केन्द्र पर खिंच जाती है। वह केन्द्र प्रकृति आत्मा से अलग और स्वतंत्र, शुद्ध प्रकाश का मण्डल है। बिना विहंगम योग के प्रकृति और आत्मा का भेद नहीं प्राप्त हो सकता। प्रकृति भूमि से उपरम होने पर ही प्रकृति और आत्मा की भूमि और दृश्य स्थान का ज्ञान होता है। अतएव सर्वोपरि विहंगम योग की भूमि को प्राप्त करने का प्रयास योगसाधकों को करना चाहिए। विहंगम योग द्वारा ही आत्मा की विशुद्ध शक्ति जागृत और सम्पुट कमल विकसित होते हैं। यह योग अनुभूति है। इसे सद्गुरु-शरण में रहकर पवित्र हृदय से विशुद्ध ज्ञान में रहस्य-भेद का आत्मा में अनुभव होता है। अनेक जन्मों के पुण्य और

सद्गुरु की असीम अनुकम्पा से यह स्थिति प्राप्त होती है। यह एक विशुद्ध विज्ञान है जो विश्व में लुप्त है। यह ब्रह्मविद्या की पूर्ण प्रतिभा संसार में नहीं है। इसके सद्गुरु सदाफलदेव जी रचित स्वर्वेद और योगाभ्यास का साधन सद्गुरु-भेद-रहस्य है। अध्यात्मविद्या के अधिकारी तत्त्वान्वेषक पथिकों को इस ज्ञान को प्राप्त कर अध्यात्म की उच्च शिखा प्राप्त करनी चाहिए। योग के आधुनिक ग्रन्थों को देख कर योग के समस्त विषयों का बोध नहीं होता। वेदों में अध्यात्म-रहस्य की ऋचायें पूर्ण रूप से प्राप्त हैं। परन्तु उन मन्त्र, ऋचाओं को सूक्ष्मदर्शी योगी ही जान सकते हैं। अतएव योग-रहस्यविद् पूर्ण सद्गुरु की खोज करें और अध्यात्म के समस्त बाह्याभ्यन्तर विषयों का बोध प्राप्त कर निर्भ्रान्त स्पष्ट मार्ग से अपने साधन-अभ्यास को बढ़ावें, तब आपका कल्याण और आध्यात्मिक इच्छा की प्राप्ति होगी।

प्रश्न- ***आपका साधन तो नाद का है, मैं नाद का अभ्यास करता हूँ।***

उत्तर- नहीं, ब्रह्माण्डी साधन नाद और प्राकृतिक शब्दों का है। ब्रह्माण्ड में प्राणों के संघर्ष से अनेक स्थानों में ध्वनि प्रकट होती है, वह नाद है। पंच शब्द इनसे सूक्ष्म हैं और इसका सम्बन्ध एक व्यापक शक्ति से है। अतएव आपको जो उपदेश मिला है वह नाद नहीं, बल्कि इससे सूक्ष्म है। आगे चलकर इससे भी सूक्ष्म तत्त्व का उपदेश होगा। आप योग की एक कोटि में हैं। आगे आपको उपदेश मिलेगा, तब सब ज्ञान स्पष्ट हो जायेंगे।

प्रश्न- ***स्वतन्त्र साधन तो हो सकता है?***

उत्तर- नहीं! स्वतन्त्र कोई साधन नहीं। स्वतन्त्र जीवन अध्यात्मपथ में नष्ट हो जायेगा। स्वतन्त्र जीवन किसी भी क्षेत्र में आगे नहीं बढ़ सकता। मनमुखी साधक को सफलता नहीं प्राप्त हो

Scanned with CamScanner

सकती। बिना मार्गदर्शक के कोई भी पथिक आगे नहीं बढ़ सकता। दिखाने वाला, मार्ग को प्रशस्त करने वाला एक प्रदर्शक चाहिए। अतएव स्वतन्त्र साधन नहीं होता, न पुस्तक देखकर या कहीं सुन-जानकर साधन करना चाहिए। जब अनुभवी सद्गुरु मिलें, तब उनके उपदेश, साधन के द्वारा आगे बढ़ने का अभ्यास करना चाहिए। सद्गुरु के प्रकाश में ही ब्रह्मविद्या की पवित्र प्रभा प्रकट होती है। सद्गुरु ही ज्ञान देने वाले और उसके प्रकाशक हैं। अध्यात्मपथ सद्गुरु-रूपी सूर्य के द्वारा ही दृष्टिगोचर होता है। सद्गुरु के स्मरण, कृपावलोकन प्रभाव में ही साधक अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है। सद्गुरुविहीन, मनमुखी साधन नहीं होता। न आज तक किसी को हुआ है। सद्गुरु-स्नेह और सहज आकर्षण से ही आत्मिक शक्तियों का जागरण होता है। साधन जान लेने से ही ज्ञान नहीं होता, न प्रकाश प्राप्त होता है। अतएव सद्गुरु-शरण में काया, मन, वाणी से पवित्र हो उसके प्रकाश में चलकर ही साधन की प्रगति और आध्यात्मिक आनन्द की प्राप्ति होती है। मनमुखी साधक का ज्ञानद्वार गुरुविहीन होने से बन्द हो जाता है और कपाट के बन्द रहने से उसकी आत्मा निशिदिन मोह-बन्धन, अज्ञानमय मार्ग पर चलकर अशान्त हो पतन हो जाती है। शान्ति की प्राप्ति सद्गुरु-शरण में होती है। मार्ग को दिखाने वाले सद्गुरु की क्षण-क्षण में आवश्यकता है। अतएव प्रथम सद्गुरु-शरण को प्राप्त होकर ही कोई साधक अपने मार्ग में सफलता प्राप्त कर सकता है। साधक में शक्ति और प्रकाश सद्गुरु द्वारा ही मिलता है। कितनें अनन्य भक्त साधकों को सद्गुरु अपनी कृपा-दृष्टिपात करके विशुद्ध ज्ञान की दृष्टि खोल देते हैं, जिसमें साधक अनन्य शरण गुरुभक्त सब तत्त्वों को प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर करने लगता है, परन्तु यह सामान्य नहीं है।

यह अनेक सहस्त्र आत्माओं में किसी एक को सद्गुरु करते हैं। यह पूर्ण अनुभूति का विषय है और सद्गुरु की महान् महिमा है। अतएव साधक सद्गुरु-नियम में रहकर सद्गुरु-प्रकाश में ही अपने साधन को बढ़ावें। इससे भिन्न विचार से सफलता और तत्त्वज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती।

जिज्ञासु- योग का उद्देश्य क्या है?

आचार्य-सच्चिदानन्द महाप्रभु की प्राप्ति, त्रिताप दुःख की निवृत्ति तथा परमानन्द की उपलब्धि।

जिज्ञासु- योग कितने प्रकार के होते हैं?

आचार्य-प्राकृतिक योग चार प्रकार के होते हैं। परन्तु ईश्वर-प्राप्ति का एकमात्र मार्ग, सदुपाय विहंगम योग है।

जिज्ञासु- विहंगम योग का क्या अर्थ है?

आचार्य-अलल पक्षी की नाईं शुद्ध चिदाकाश में विचरण करना।

जिज्ञासु- प्राकृतिक योगों से क्या अभिप्राय है?

आचार्य-प्रकृति-मण्डल में होने वाले योग और उनके भौतिक ऐश्वर्य की प्राप्ति।

जिज्ञासु- योग का अर्थ क्या है?

आचार्य-योग का वास्तविक अर्थ परब्रह्म का सम्बन्ध होना है।

जिज्ञासु- योग का दूसरा अर्थ क्या है?

आचार्य-वृत्तियों का निरोध और आत्म-साक्षात्कार।

जिज्ञासु- भक्ति और योग का क्या अर्थ है?

आचार्य-ईश्वर के प्रति अनन्य प्रेम को भक्ति कहते हैं और योग का अर्थ है-- ईश्वर से संयोग। दोनों का वास्तविक अर्थ एक है।

जिज्ञासु- उपासना क्या है?

Scanned with CamScanner

आचार्य-उपासना योग को कहते हैं। योग, उपासना और भक्ति एक अर्थ के वाचक पर्याय शब्द हैं।

जिज्ञासु- *योग का प्रारम्भ कब करना चाहिए?*

आचार्य-जब यम-नियम पूर्णरूप से जीवन में हों और सद्गुरु-प्रेम सहज में प्राप्त हो, तब योग-साधन का प्रारम्भ करना लाभप्रद होता है।

जिज्ञासु- *योग में विघ्न क्या है?*

आचार्य-पतंजलि मुनि ने नौ विक्षेप योग के बतलाये हैं। व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्ति दर्शन, अलब्धभूमिकत्व, अनवस्थितत्त्व– ये योग की विघ्नें हैं।

जिज्ञासु- *इन विघ्नों का नाश कैसे होगा?*

आचार्य-ईश्वर एक तत्त्व का अभ्यास होने से समस्त विघ्नों का नाश होता है। इन विघ्नों का नाश भी योगाभ्यास करने से ही होगा।

जिज्ञासु- *योग में आहार-विहार क्या होना चाहिये?*

आचार्य-शुद्ध, सात्त्विक, जीवनप्रद वस्तुओं का सेवन लाभप्रद है। मादक, अभक्ष तथा अपेय वस्तुओं का पान करने वाला साधन नहीं कर सकता।

जिज्ञासु- *योग कब पूर्ण होगा?*

आचार्य-जब अपने अन्दर ईश्वरी शक्ति आने लगेगी और आनन्द-ज्ञान का समुन्द्र उमड़ने लगेगा।

जिज्ञासु- *बालकों को क्या करना चाहिए?*

आचार्य-गायत्री का २० बार जप और तीन प्राणायाम करना चाहिए। विद्या तप है, उसी के द्वारा सारा जीवन आधारित है। अतः सदाचार, संयम के साथ विद्या का अभ्यास करें।

जिज्ञासु- *विद्या पढ़ने का उद्देश्य क्या है?*

आचार्य-यथार्थ कर्त्तव्य को जानना, विद्या पढ़ने का उद्देश्य है।

जिज्ञासु-* *यथार्थज्ञान विद्या पढ़ने से होगा, परन्तु आजीविका कैसे चलेगी?

आचार्य-जब यथार्थज्ञान होगा, तभी अच्छे ढंग से किसी भी क्षेत्र में जीवन रहकर कलुषित नहीं हो सकता और उत्तम रूप से आजीविका प्राप्त होगी। समाज और व्यवहार की दुर्व्यवस्था से यह सारी अशान्ति है। जीवन को विवेक, सदाचार और संयममय होने पर कोई कार्य करने में कठिनाई नहीं हो सकती।

जिज्ञासु-* *प्राणायाम करने से क्या होता है?

आचार्य-फेफड़ा, स्नायु शक्तियों में बल होता है और बुद्धि का विकास होता है। अधिक प्राणायाम चिरकाल तक करने से पवन अभ्यासी का कुम्भक सिद्ध हो जाता है।

जिज्ञासु-* *पवन के अभ्यास का नियम क्या है?

आचार्य-सदाचार, ब्रह्मचर्य का पालन कर धीरे-धीरे पवन का अभ्यास बढ़ावें और अन्तर में अपनी ज्ञानशक्ति को स्थिर रखें। जबरदस्ती कुम्भक करके वायु को नहीं रोकना चाहिए। इससे मस्तिष्क की हानि होती है। शुद्ध अमाशय बालब्रह्मचारी ही चिरकाल तक अपने वायु को धारण कर स्थिर रख सकता है। इसलिए साधारण नियम पालन करने वालों को अधिक प्राणायाम गुरु की छत्रछाया के बिना कभी नहीं करना चाहिए।

जिज्ञासु-* *पवन का अभ्यास कब करना चाहिए?

आचार्य-ब्राह्ममुहूर्त से लेकर ६ बजे दिन तक इसका उत्तम समय है। दिन-रात मिलाकर चार बार पवन का अभ्यास हो सकता है। परन्तु ये हठयोग की क्रियायें अधिक न करके भजन में अधिक समय लगाना चाहिए।

जिज्ञासु-* *साधन कितने दिनों में पूरा होगा?

आचार्य-पूर्ण साधक अपने साधन द्वारा षट् मास में समाधि-अवस्था

की प्राप्ति करता है। नहीं तो अपने पुरुषार्थ, पुण्य-प्रताप, सद्गुरु की भक्ति के अनुसार सभी के साधन समयानुकूल पूर्ण होते हैं और लक्ष्य की प्राप्ति होती है। अनेक जन्मों के पुरुषार्थ से यह अवस्था प्राप्त होती है और गुरु-प्रताप से क्षणमात्र में कुण्डलिनी मार्ग छोड़ देती है और दिव्य ज्योति का दर्शन होता है, किन्तु यह उत्तम अधिकारी में होता है।

जिज्ञासु- *जब वह ब्रह्म वाणी का विषय नहीं है, तब उसकी उपासना कैसे हो सकती है।*

आचार्य-वाणी द्वारा या प्राकृतिक करणों से परब्रह्म की उपासना नहीं होती। जो मन, बुद्धि, इन्द्रियों, चतुष्टय अन्तःकरण से होता है, वह सभी कर्म है।

जिज्ञासु- *क्या वाणी का जप मन्त्रसिद्धि नहीं होती?*

आचार्य-वाणी द्वारा वाच्य नाम का उच्चारण होता है। नामजप से नामी प्रभु के अस्तित्व का ज्ञान स्मरण होता है। प्रभु-प्राप्ति नहीं, क्योंकि वह परब्रह्म अनुभव में आता है। जप द्वारा क्षर नामों के उच्चारण से वह नहीं प्राप्त होता। मन्त्रसिद्धि होती है और उससे प्राकृतिक लाभ प्राप्त होते हैं। ईश्वर की प्राप्ति नहीं होती।

जिज्ञासु- *ईश्वर जब अव्यक्त है, तब उसका नाम क्या हो सकता है?*

आचार्य-अव्यक्त, अनिर्वाच्य परब्रह्म का नाम नहीं होता। परन्तु ईश्वर के अनन्त कर्म, गुण, स्वभाव होने से अनेक गुण विशिष्ट, अनेकों नाम ऋषियों ने रखा है। ओऽम् ईश्वर का सर्वश्रेष्ठ वैदिक नाम है, जो कुछ व्यक्त नाम वाणी द्वारा कहा जाता है, प्राकृतिक क्षर नाम है जो ऋषियों द्वारा वर्णित है। अतएव अव्यक्त, प्रकृतिपार ईश्वर का नाम नहीं हो सकता, जो कहा जाता है वह सर्वकल्पित क्षर नाम है। वास्तविक नाम अनुभव

में प्रत्यक्ष देखा जाता है। उसे अवाच्य नाम कहते हैं। सामवेद में 'स्वर्ण नाम दृश्ये' अर्थात् स्वर्णमय प्रकाशयुक्त नाम देखा जाता है।

जिज्ञासु- नाम क्या है?

आचार्य-प्रभु निःशब्द सर्वव्यापी सत्ता को वेदों में नाम, कशा, मायु कहा गया है। वह परब्रह्म शब्दस्वरूप है, जिसे योगिजन अनुभव में प्रत्यक्ष करते हैं। उसी की धार को आत्मा प्राप्त कर शान्त और निमग्न हो जाती है। उसी नाम या शब्द के अतिरिक्त दूसरा नहीं कहा जा सकता, क्योंकि अनुभव में शब्द का ही प्रकाश और शब्द का ही आनन्द है। शब्द से परे कुछ नहीं है। इसलिए सन्तवाणी में उस परम पुरुष, नामधनी, अनिर्वाच्य सत्ता को सारशब्द कहा गया है।

जिज्ञासु- वह अनुभवगम्य नाम कैसे प्राप्त होता है?

आचार्य-विशुद्ध भक्ति जो अनात्म जगत् से होकर अपने शुद्ध स्वरूप से होती है। अपने चेतन स्वरूप से सब नाद, विन्द, अनहद का सम्बन्ध छोड़कर आधार-स्कम्भ परम प्रभु की अनुभव-उपासना होती है।

जिज्ञासु- अनुभवगम्य उपासना क्या है?

आचार्य-जो उपासना चिन्मय आत्मस्वरूप से प्रकृतिपार असंग होती है। जहाँ कोई प्रकृति-आधार नहीं रहता, चेतन चेतन का अनुभव करता है।

जिज्ञासु- उपासना क्या है?

आचार्य-योग, उपासना, भक्ति एक अर्थ के वाचक समानार्थक पर्याय शब्द हैं। आत्मा द्वारा समीप ही आत्म स्थित परब्रह्म का अनुभव करना उपासना या भक्ति है। जहाँ जड़ प्रकृति का सम्बन्ध नहीं है।

Scanned with CamScanner

जिज्ञासु- परमात्मा सत्यस्वरूप है और प्रकृति का गुण सत है फिर प्रकृति के त्रिगुणात्मक स्वरूप से परब्रह्म अलग कैसे हैं?

आचार्य- सत्य वह है जो तीनों काल में एक रूप से रहे। परब्रह्म सृष्टि, प्रलय या किसी भी काल में अपने सत्ता और स्वरूप से विकारवान नहीं होता, इसलिए वह सत्य कहा गया है। किन्तु प्रकृति का गुण सत जिसका कारण प्रकृति है वह सतस्वरूप प्रकृति परिणामिनी है। प्रकृति के बने पदार्थों में सत्त्व, रज, तम-- ये तीन गुण हुआ करते हैं। अतएव सत्त्व, रज, तम वाली कारण प्रकृति परिणामी, नित्य है। इस कारण 'सत' कूटस्थ, नित्य न होकर प्रकृति का गुण होने से परिणामी हुआ। अतः सत् प्रकृति का गुण है और परब्रह्म सत्यस्वरूप, चेतन, सहज, नित्य है। उसमें परिणाम, विकार नहीं होता। प्रकृति में शुभ गुण सत्य है जिसे इन्द्रियों का गुह्य विकास और उत्तम पुरुषार्थ की प्राप्ति होती है और रज, तम, प्रकृति के निम्न भाव को प्रकट करते हैं। सत्त्व में जीवन प्रकाश है, जिसके होने से मनुष्यों की उत्थान की ओर प्रवृत्ति होती है। इसलिए प्रकृति सतगुण का प्रकाश उत्थान का कहा गया है। प्रकृति के अन्दर जो स्वाभाविक उत्थान की प्रेरणा होती है वह सत्त्व गुण का ही प्रकाश है। विद्या, धन, यश, प्रज्ञान इत्यादि का प्रादुर्भाव शुद्ध सत्त्व गुण के उदय होने पर ही विकसित होता है। अतएव इस सत्त्व से विकसित होकर वह सत्त्वस्वरूप ईश्वर भिन्न है। वह त्रिगुणात्मक जनित में व्यापक होते हुए भी निस्संग, निर्लेप होकर सारे जगत् का प्रेरक और प्रकाशक है।

जिज्ञासु- सत्त्व क्या वस्तु है?

आचार्य- सत्त्व कहते हैं अस्तित्व के होने का जो भाव है वह सत्त्व है, जिसे पदार्थ कहते हैं।

जिज्ञासु-* *तब ईश्वर होता है यह भाव हुआ?

आचार्य- नहीं, था और होगा इसका सम्बोधन यह एकदेशीय काल, परिछिन्न, बद्ध वस्तु में ही होता है, परन्तु परब्रह्म तो तीनों काल में एकरूप से है। उसे होना नहीं कहा जा सकता। मूल द्रव्य अस्तित्व कारण-कार्य रूप में आ गया, तब उसमें परिणाम हो गया। तब सत्य का लक्षण कहाँ बना? इसलिए कारण-कार्य और असत से पृथक् परब्रह्म का निरूपण किया गया है। प्रकृति और प्रकृति-कार्य इन दोनों से अलग आत्मा और इससे भी भिन्न पृथक् परब्रह्म है। इसी भाव पर गीता में आया है—

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते।।१३।१२।।

जो जानने योग्य है, जिसे जानकर हम अमृत प्राप्त करते हैं, वह अनादि परब्रह्म न सत् ही कहा जा सकता है और न असत् ही। अतएव गीता में परब्रह्म सत्-असत् दोनों से पृथक् ही निरूपण किया है?

जिज्ञासु-* *प्रकृति में सत्त्व, रज, तम अलग हैं या एक साथ हैं?

आचार्य- सत्त्व, रज, तम ये प्रकृति के तीन गुण हैं। उसका द्रव्य प्रकृति एक ही है। तीन संख्या ही अलग का सम्बोधक है परन्तु ये तीनों एक ही पदार्थ में हैं, क्योंकि तीनों की एकता ही प्रकृति है।

जिज्ञासु-* *सत्त्व, रज, तम ये तीनों विभिन्न गुण द्रव्य में नहीं हो सकते?

आचार्य- तीनों विभिन्न गुण होने से ही प्रकृति के विभिन्न पदार्थ प्रकट होते हैं। यदि तीनों एक द्रव्य में न रहें, तब प्रकृति का लक्षण न बनेगा? तीनों की साम्यता ही प्रकृति है।

जिज्ञासु-* *तीनों गुण एक समान रहते हैं?

Scanned with CamScanner

आचार्य-प्रकृति के हरेक पदार्थों में तीनों गुण हैं और तीनों गुण की क्रिया शरीर के बाह्य जगत् में सदैव देखी जाती है। तीनों गुण होते हुए भी विकासरूप से जिस गुण का भाव रहता है वह गुण प्रकट होता है, दूसरा गुण निम्न स्तर में हो जाता है। इस प्रकार सत्त्व, रज, तम तीनों के भाव प्रकृति के व्यक्त जगत् में या शरीर में देखे जाते हैं। समय के न्यून और विशेष अवस्था में तीनों का भाव होता है। परन्तु तीनों गुणों की स्थिति मूलतः शरीर में रहती है। सबका कारण प्रकृति सदैव नित्य बनी हुई है। अतएव गुणों का तिरोभाव प्रकृति से पृथक् स्थिति में आने से ही होता है। कभी सत् का प्रभाव, तो कभी रज, तो कभी तम। इस तरह इसका व्यवहार देखा जाता है। व्यवहार में ऐसी न्यूनाधिक अवस्था होने पर भी मूलतः तीनों की साम्यावस्था प्रकृति सदैव बनी रहती है। इस प्रकार साम्यावस्था जो प्रकृति का लक्षण है वह सत्य है।

जिज्ञासु- तीनों गुण का भाव एक साथ कैसे है?

आचार्य-परमाणुओं का योग सृष्टि और उसका अलग होना प्रलय है। सृष्टि में सत्त्व, रज, तम की साम्यावस्था रहती है, परन्तु विनाश में परमाणु सत्त्व, रज, तम के अलग-अलग होते रहते हैं, जिससे सृष्टि के रचना का विनाश होने लगता है।

जिज्ञासु- क्या यह पवन का अभ्यास भजन नहीं है?

आचार्य-नहीं, कितने तान्त्रिक गुहा में कपाट बन्दकर घण्टों, तीनों पवन का अभ्यास कर तन्त्र-मन्त्र सिद्ध करते हैं। यह कोई योग नहीं है। इस योग से प्राकृतिक फल प्राप्त होता है। परन्तु परमानन्द की प्राप्ति इन प्राकृतिक जड़ साधनों से नहीं प्राप्त होती।

Scanned with CamScanner

जिज्ञासु- प्राकृतिक योग क्या है?

आचार्य-तन्त्र, मन्त्र, मनसिद्ध विभूतियों के सारे साधन और अन्तरी पिण्ड-ब्रह्मांण्ड के समस्त साधन प्राकृतिक काल के गाल में हैं। सद्गुरुविहीन संसारी भावों से अधिकांश प्राणी इन साधनों को करते हैं। वैदिक काल के ह्रास के बाद इन साधनों का प्रचार अधिक हुआ है। आध्यात्मिक लक्ष्य से विहीन ये सारे साधन, भक्ति-मुक्ति में तथा अज्ञानमय कर्म-प्राप्ति में सहायक हैं।

जिज्ञासु- योग का अधिकारी कौन हो सकता है?

आचार्य-चतुष्टय साधनसम्पन्न।

जिज्ञासु- चतुष्टय साधन क्या है?

आचार्य-ज्ञान, वैराग्य, शम, दम, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधानता, उपरति तथा मुमुक्षुत्व।

जिज्ञासु- मुक्ति क्या है?

आचार्य-बन्धन से छूट जाना मुक्ति है।

जिज्ञासु- इसकी क्या उपाय है?

आचार्य-सद्गुरु-सेवा द्वारा, ब्रह्मविद्या के सहज योगाभ्यास द्वारा।

जिज्ञासु- योग कैसे होगा?

आचार्य-आत्मिक शक्ति को वहिर्मुख जगत् से अन्तर्मुख करके।

जिज्ञासु- तीनों गुण भिन्न भाव वाले एक पदार्थ कैसे हैं?

आचार्य-एक मूलतः प्रकृति से आकाश, वायु अग्नि, जल, पृथ्वी कैसे भिन्न-भिन्न पदार्थ सृष्टि-विकास के लिए प्रकट होते हैं? एक ही शरीर में पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ पंच तत्त्वों के पाँचों विषयों को ग्रहण करती हैं। पाँच तत्त्वों के सत्त्व गुण अंश से ज्ञानेन्द्रियाँ इसी शरीर में हैं एवं रजोगुण से बनी हुई कर्मेन्द्रियाँ भी इसी शरीर में हैं एवं तमोगुण अंश से बनी हुई पच्चीस प्रकृतियाँ इसी शरीर

में काम करती हैं। एक कर्मेन्द्रिय में जलतत्त्व से मूत्र और दूसरा पृथ्वी तत्त्व से मल की निवृत्ति होती है। अतएव तीनों गुण एक ही प्रकृति द्रव्य के हैं और तीनों की साम्यता इस शरीर में देखी जाती है। अतएव तीनों गुण वाली प्रकृति तीनों की साम्यावस्था होकर एक ही मूल में स्थित है। एक ही प्रदेश और अंग में इन तीनों की क्रिया देखने में स्पष्ट भासित होती है। भिन्न-भिन्न गुणों के भाव से भिन्न प्रकार के पदार्थ दिखाई पड़ते हैं। हरेक पदार्थ में तीनों गुण हैं। कभी किसी गुण का प्रभाव, इसी से न्यूनाधिकता प्रकट होती है। वास्तव में तीनों गुण सृष्टि के हरेक पदार्थों में समानरूप से विद्यमान हैं और तीनों का समानरूप से इस शरीर में कार्य देखा जाता है। इसलिए सत्त्व, रज, तम की साम्यावस्था वाली परिणामिनी प्रकृति सिद्ध है। एक गुण से सृष्टि की रचना नहीं होती। एक में सृष्टि ही नहीं है, जब तीनों मिलेंगे तब साम्यता होगी, तब तीनों के संगठन से परमाणुओं के योग से सृष्टि का विकास होगा।

जिज्ञासु- परिणामी विकार क्या है?

आचार्य- इस त्रिगुणात्मक जगत् में एक स्थिति इसलिए नहीं रहती कि एक गुण बराबर नहीं रहते। बराबर बदला करते हैं। इसलिए पदार्थों का परिवर्तन परमाणुओं के योग-वियोग होने से परिणाम हुआ करता है। किसी भी गुण की विशेषता से जगत् नहीं बन सकता। बराबर समष्टि होने से ही जगत् की रचना होती है। एक के विशेष होने से दूसरे के भाव में द्वन्द्व होगा। सत, रज, तम इन त्रिगुणों के द्वन्द्व मिश्रण से अलग होने के लिए योग-साधन का उपदेश प्रतिपादन किया गया है। अतएव परिणामिनी प्रकृति की रचना में तीनों गुण समानरूप से पाये जाते हैं और इस त्रिगुणात्मक क्रिया से जगत् का विस्तार होता है।

जिज्ञासु- प्रकृति से परे ब्रह्म है, क्या प्रकृति में परब्रह्म नहीं है?

Scanned with CamScanner

*आचार्य-*एक ही शरीर में ब्रह्म, जीव, प्रकृति-- ये तीनों पदार्थ स्थित हैं। प्रकृति का घेरा जहाँ तक है, वहाँ तक आत्मा को प्राकृतिक दृश्य ही भासित होते हैं, परन्तु आत्मा की चेतना प्रकृति की सीमा परमाणु-मण्डल को जब पार कर जाती है, तब आत्मा को परब्रह्म का दर्शन होता है। इस आशय से प्रकृति के परे परब्रह्म का निर्देश किया जाता है। वास्तव में विज्ञानी आत्मा प्रकृति के तत्त्वों में भी और आत्मा के अन्दर भी परब्रह्म को देखता है और प्राप्त करता है। अतएव ब्रह्म सर्वव्यापक है एवं जीव और प्रकृति के हरेक तत्त्वों में प्रकाश कर रहा है। इसीलिये वेद में एक ही पाद में सृष्टि और तीन पाद अमृत बतलाया गया है।

तावन्तो अस्य महिमानस्ततो ज्यायांश्च पुरुषः।
पादोस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।।

--अथर्ववेद।

जिज्ञासु-* *ज्ञान में विभिन्नता क्यों होती हैं?

*आचार्य-*बुद्धि के कोटि-भेद से। जिसका जिस प्रकार का अन्न, जल, संयम, व्यवहार, आचरण, प्रकृति और संगति है, उस प्रकार की बुद्धि होती है। उसमें उसी प्रकार का ज्ञान भी व्यावहारिक जगत् में देखा जाता है। तपस्वी, कर्मनिष्ठ, राजनीतिक, सामाजिक प्रत्येक क्षेत्रों में अलग-अलग बुद्धि का व्यवहार है, परन्तु यथार्थतः जो ज्ञानतत्त्व है वह एक ही है, वह दूसरा नहीं हो सकता। भौतिक जगत् में सूक्ष्म बुद्धियों का कार्य देखा जाता है। जिस प्रकार जिसकी बुद्धि गहन तत्त्वों के परखने में अग्रसर होती है। वह शान्त निरुद्धावस्था में और भी गहन से गहन तत्त्वों का उत्तरोत्तर पारख करने लगती है। यथार्थज्ञान और यथार्थबुद्धि पारदर्शी योगी को ही होती है।

Scanned with CamScanner

जिज्ञासु- ऋषियों को तो ब्रह्म का ज्ञान होता है प्रकृति का नहीं?

आचार्य-ईश्वर के प्रत्यक्ष होने पर उन्हें सारे पदार्थों का निर्भ्रान्त ज्ञान होता है या जिस पदार्थ की ओर उनकी अनुभव चेतना फैलती है, उसका यथार्थ ज्ञान होने लगता है। संशय और शोक तत्त्वज्ञानी ब्रह्मनिष्ठ योगी को हो नहीं सकता। जो सारे जगत् के निमित्त कारण ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त कर लिया, उसे प्रकृति और जगत्-विस्तार का भी ज्ञान पूर्ण हो जाता है। ऋषियों के ग्रन्थ और सद्ज्ञान इसी भाव को पुष्ट करते हैं। प्रकृति से परे पहुँची हुई आत्मा में ईश्वरीय प्रकाश में विशेष ज्ञान प्रकट होता है, जो निर्भ्रान्त और अत्यन्त भ्रमरहित होता है। अतएव यथार्थज्ञान के जानने वाले विवेकी आप्त वचनों पर ही विश्वास रखते हैं और अपना निश्चय प्रकट करते हैं।

जिज्ञासु- जो सृष्टि का ज्ञान नहीं रखता वह ब्रह्म का भी ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता।

आचार्य-पूर्णरूप से जानने वाला ब्रह्मज्ञानी ही होता है और उसी को परमाणुओं से भी सूक्ष्म, गहन ब्रह्मतत्त्व का बोध होता है। जो ज्ञान के मूल कारण को नहीं जाना, वह प्रकृति के तत्त्वों का यथार्थज्ञान कैसे प्राप्त कर सकता है? जो ब्रह्म को नहीं जाना, वह पूर्णरूप से प्रकृति को भी नहीं जानता। ज्ञान का प्रकाश एवं जहाँ से ज्ञान का स्रोत प्रवाहित होता है वह ईश्वर है। अतएव बिना ईश्वर के ज्ञान के प्रकृति का भी ज्ञान अपूर्ण रहेगा। जितने भी हमारे शास्त्र, वेद, उपनिषद्, आयुर्वेद के ज्ञान हैं, सब ऋषियों द्वारा ही जगत् में प्रकट होते हैं। भौतिक ज्ञान को भी, जिन्हें आप सृष्टि का ज्ञान कहते हैं, वह परब्रह्म से सूक्ष्म ज्ञान नहीं है। इसलिये यथार्थज्ञान को प्रकट करने वाले ऋषियों के वचन सदैव सत्य और निर्भ्रान्त हैं।

जिज्ञासु- जब सृष्टि का ही ज्ञान नहीं, तब ब्रह्म का ज्ञान कैसा?

Scanned with CamScanner

आचार्य-जब ब्रह्म का ज्ञान नहीं, तब सृष्टि का ज्ञान कैसा? बिना ब्रह्म-प्राप्ति के यथार्थज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। हरेक पदार्थ का ज्ञान योगी, समाधिस्थ ही करते हैं। वाचक ज्ञानी नहीं। ज्ञानस्वरूप ईश्वर है। उसी के प्राप्त होने पर प्रकृति या ब्रह्म का यथार्थज्ञान हो सकता है। जब ईश्वर का ज्ञान होता है, तब उसकी सृष्टि-रचना का भी ज्ञान ऋषियों को हो जाता है और जो दैवी प्रकाश में जीवत्व शक्ति से ज्ञान बांहर है, वह भी पूर्णरूप से ऋषियों के आत्मा में प्रकट होता है। अतएव ऋषियों का ज्ञान पूर्ण और अनुभवयुक्त सत्य है, क्योंकि उनके ज्ञान में किसी प्रकार का आवरण नहीं रहता। सृष्टि के परमाणुओं को जिन्होंने देखा है और सृष्टि के गहन-से-गहन तत्त्वों का जो परख किया है, वह अध्यात्मनिष्ठ, ब्रह्मदर्शी सृष्टि के मौलिक विकास को भी जाना है। वेद, उपनिषद्, दर्शन और ब्रह्मविद्या के आदि आचार्य नित्य अनादि सद्गुरु के जो वचन करोड़ों वर्ष से नित्य प्रमाणित सिद्ध हो रहे हैं, उन वचनों के सामने किसी भौतिक ज्ञान के जानने वाले विद्वानों के वचनों का क्या मूल्य हो सकता है?

जिज्ञासु- विज्ञान तो यथार्थज्ञान है?

आचार्य-हाँ! विज्ञान में भ्रम नहीं रहता, परन्तु आपके समझने और जानने में कोटि-भेद से अन्तर हो सकता है। उद्देश्य का प्रयत्न और पुरुषार्थ अनुकूल साध्य-सिद्धि में पर्याप्त नहीं हो सकता। भौतिक प्रयत्न अभौतिक पदार्थ की सिद्धि में निष्फल हैं, इसका निर्णय ऋषि, योगी ही कर सकते हैं। जो दोनों तत्त्वों को जानने वाला पारदर्शी मर्मज्ञ है, उसी को प्रकृति का निर्भ्रान्त ज्ञान हो सकता है। जिन्होंने प्रकृति के गहन-से-गहन तत्त्वों को अपनी प्राकृतिक और योगजन्य बुद्धि से सत्य के निष्कर्ष को परखने पर अपने

Scanned with CamScanner

ध्यान को एकत्रित किया है। सत्य आत्मा में स्वभावतः आता है एवं असम्भव अस्तित्व से आत्मा विपरीत हो जाती है। अतएव आध्यात्मिक विज्ञान में किसी प्रकार का भ्रम नहीं हो सकता।

सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति।।

—यजु०अ०४०।६।।

सर्वभूतों में जो परब्रह्म को देखता है। इस प्रत्यक्षज्ञान के हो जाने पर योगी को किसी प्रकार का संशय नहीं होता, वह निर्भ्रान्त ज्ञानवान हो जाता है।

***जिज्ञासु-* मुझे अपने सत्य पर पूर्ण विश्वास है?**

आचार्य- नहीं, यदि विश्वास और उनका सही ज्ञान रहता तो संशय नहीं हो सकता। जहाँ संशय है वहीं तर्क-वितर्क की आवश्यकता है और विश्वास वह है जो आत्मा में स्थिर रहे, परन्तु यह भी नहीं देखा जाता। कभी हाँ, कभी ना। जो आत्मा के अनुकूल वाणी से कहा जाय वही सत्य वचन है। उसके विपरीत असत्य, अज्ञान है। अतएव सत्य सिद्धान्त के बोध के लिए अध्यात्मपथ पर चलकर गुरु-प्रदेश में वृत्तियों को शान्त करें, तब आत्मा की स्पष्टता में ईश्वर के प्रकाश से सच्चे ज्ञान का प्रादुर्भाव होगा और शान्ति की प्राप्ति होगी। जो भौतिक जगत् को चला रहा है, ज़ो इनका प्रेरक है, उसी के द्वारा उसकी प्रेरणाशक्ति और उसकी क्रिया का भी सद्ज्ञान प्राप्त होता है। केवल एकांगी ज्ञान से सम्पूर्ण तत्त्वज्ञान का बोध करना अल्पज्ञता है। ज्ञानस्वरूप ईश्वर है और उसी में समस्त ज्ञान है। अतएव ज्ञान की सच्ची प्राप्ति के लिए गुरु की शरण को प्राप्त करें और अध्यात्मतत्त्व के प्रकाश में अलौकिक, पारलौकिक समस्त पदार्थों का निर्णय करें।

***जिज्ञासु-* राष्ट्र-शान्ति की प्रार्थना करने का आदेश होता है बीच में नहीं आदेश था?**

आचार्य- आत्मकल्याण या अपनी वैयक्तिक प्रार्थना प्रत्येक समय प्रतिदिन होने वाली नित्य की है, परन्तु किसी आवश्यक कारणवश किसी एक उद्देश्य को लेकर जो प्रार्थना की जाती है वह राजनीतिक प्रार्थना है। इसका सम्बन्ध देश की अशान्ति एवं उपद्रव को शान्त करने के लिए अपने आत्मिक बल के प्रभाव से शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने का है। अतएव इसका उपयोग नैमत्तिक है और होना चाहिए।

जिज्ञासु- *साधन-उपदेश के द्वारा सबको उसके फल की प्राप्ति होती है?*

आचार्य- जिस कोटि की आत्मा है, जिस कोटि का ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, प्रयत्न है उसके अनुसार उसको फल प्राप्त होता है। यह योग-साधन तो अनुभवयुक्त वेद, उपनिषद्, दर्शन और सद्ग्रन्थों के अनुकूल है। इसका फल अनेक शिष्य, नर-नारियों को प्राप्त हो रहा है। उन्हें अनुभव, यथार्थज्ञान और साध्य की प्राप्ति होती है। अतएव इस प्रत्यक्ष प्रमाण, अनुभवयुक्त विवेक के आधार पर जो सत्य सिद्धान्त का निर्णय होता है वह स्पष्ट होता है। अतः सत्संग, साधन, अभ्यास होना चाहिए। वृत्तियों के निरोध में और अध्यात्म के विमल प्रकाश में सब बातों का स्पष्ट ज्ञान होता है। वाद-विवाद और बाहरी वाक्य-प्रवञ्चना से नहीं।

जिज्ञासु- *आत्मा का गुण क्या है?*

आचार्य- ज्ञान, इच्छा और प्रयत्न।

जिज्ञासु- *आत्मा का स्थान कहाँ है?*

आचार्य- हृदय-प्रदेश में अंगुष्ठ मात्र।

जिज्ञासु- *जब आत्मा चेतन है और उसमें ज्ञान है, तब प्रकृति-मुख क्यों जाता है?*

आचार्य- जीव अणु परिमित ज्ञानवान है अर्थात् अल्पज्ञ होने से अपान के कारण प्रकृति का सम्बन्ध रहता है एवं प्रकृतिमुख प्रवाहित होता है।

Scanned with CamScanner

जिज्ञासु- मन का प्रेरक कौन है?
आचार्य-आत्मा के संयोग से मन द्वारा इन्द्रिय-जगत् में क्रिया होती है।

जिज्ञासु- आत्मा के अधीन मन कब होता है?
आचार्य-जब आत्मा मन से असंग होकर अपने चेतन प्रकाश में विराजमान होता है।

जिज्ञासु- मन की स्थिरता कैसे होगी?
आचार्य-योग द्वारा मन को उसकी भूमि में स्थिर कर देने पर मन विषयों को छोड़कर शान्त हो जाता है।

जिज्ञासु- मन की प्रसन्नता क्या है?
आचार्य-वृत्तियों को रोककर अन्तर्मुख हो, योगस्थ होकर स्वतन्त्र इन्द्रियों के विषयों को प्राप्त करने से मन सन्तुष्ट होता है। यह योग की प्राकृतिक अवस्था है। आत्मा के अनुकूल मन इन्द्रियों के व्यवहार से ही जीवन की सफलता का द्योतक है।

जिज्ञासु- आत्मा और प्रकृति का सम्बन्ध क्या है?
आचार्य-जड़ जगत् में आत्मा का भोग्य प्रकृति है और आत्मा इसका भोक्ता है।

जिज्ञासु- आत्मा चेतन होकर जड़ जगत् के सुखों की इच्छा क्यों करता है?
आचार्य-अविद्या से अर्थात् वस्तु का ज्ञान न होने से आत्मा अपने सुख को छोड़कर जगत् के सुखों की इच्छा करता है।

जिज्ञासु- आत्मा का सुख क्या है?
आचार्य-चेतन एक रस परम सुख ब्रह्मानन्द।

जिज्ञासु- जड़ सुख क्या है?
आचार्य-अनित्य इन्द्रिय-सुख, जिसका परिणाम दुःख, परिताप और अत्यन्त कष्ट होता है।

जिज्ञासु- पतन क्या है?

आचार्य-प्राकृतिक नश्वर सुखों की इच्छा का होना पतन है।

जिज्ञासु- त्याग क्या है?

आचार्य-भोगों की इच्छा से सन्तुष्ट होकर विषयों से उपरम हो जाना और आत्मा से प्रकृति का सम्बन्ध छूट जाना त्याग है।

जिज्ञासु- त्याग इन्द्रियों से होगा या मन से?

आचार्य-मन से विषय जब हट जाते हैं, तब इन्द्रियों से स्वाभाविक ही विषय नहीं हो सकते। इसलिए मन को निर्विषय कर उसे वश में करने का प्रयत्न करना चाहिए।

जिज्ञासु- वैराग्य क्या है?

आचार्य-विषयों का इच्छारहित होना वैराग्य है।

जिज्ञासु- ज्ञान किसे कहते हैं?

आचार्य-जैसी जो वस्तु है, उसको उसी रूप में जानना ज्ञान है।

जिज्ञासु- ज्ञान कैसे होता है?

आचार्य-जब आत्मा से प्रकृति का आवरण टल जाता है और ज्ञानस्वरूप ईश्वर की प्राप्ति हो जाती है।

जिज्ञासु- इन्द्रियों में शक्ति कैसे प्रकट होती है?

आचार्य-प्रभुसत्ता की प्रेरणा से प्रकृति के प्रत्येक पदार्थों में शक्ति है, जो चेतन के सम्बन्ध से जागृत हो क्रियारूप में प्रकट होती है।

जिज्ञासु- आत्मा कोई कर्म स्वयं नहीं करता?

आचार्य-जड़ करणों से कर्म और अपने शुद्ध चेतन करण से भक्ति करता है।

जिज्ञासु- क्या इन्द्रियों से भक्ति नहीं हो सकती?

आचार्य-इन्द्रियों से कर्म होते हैं, जो जीवों के बन्धन के हेतु हैं। भक्ति आत्मा का विषय है, इन्द्रिय- जगत् का नहीं।

जिज्ञासु- कर्म तो इन्द्रियों से होंगे ही, इन कर्मों से निवृत्ति कैसे होगी?

Scanned with CamScanner

आचार्य-जब प्रकृति और आत्मा का सम्बन्ध हो जाता है और आत्मा स्वतन्त्र अपने स्वरूप से चेतन प्रभु की भक्ति करता है, तब कर्मों का बन्धन छूट जाता है।

जिज्ञासु- आत्मा शुद्धस्वरूप से क्या करता है?

आचार्य-नित्य ज्ञान, नित्य आनन्द और अपने चेतनत्व के प्रकाश में पूर्णानन्द की प्राप्ति करता है।

जिज्ञासु- क्या जड़ सुखों से शान्ति नहीं प्राप्त होती?

आचार्य-जड़ भोगों को अनेक जन्मों से भोगने पर भी आत्मा को शान्ति नहीं प्राप्त हुई, इसलिए आत्मा उस नित्य सुख की प्राप्ति के लिए अज्ञान से इन्द्रियों द्वारा सुख की खोज करता है, जो कभी प्राप्त नहीं हो सकता। इन्द्रिय-सुख से तृप्ति नहीं होती। इससे यह सिद्ध है कि आत्मा का सुख इस इन्द्रिय-जगत् से दूर तथा भिन्न है। अतएव विषय से वैराग्य हो, चेतन आत्मसुख की प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिए।

जिज्ञासु- मन का आधार क्या है?

आचार्य-एक पाद स्थित चेतन शक्ति। मन परमाणुओं के संयोग से विश्व में अपने कार्यों को करता है।

जिज्ञासु- मन का स्वरूप क्या है?

आचार्य-बार-बार विषय उसके सामने रहते हैं। वह उन राग-विषयों के योग-वियोग में अशान्त रहता है।

जिज्ञासु- मन जब आत्मा के अधीन है, तब वह स्वतन्त्र क्रिया कैसे करता है?

आचार्य-विषय परवश मन उसके तरंग में बहकर आत्मा को दुःखी करता है। मोहवश जीवात्मा मन के विषय को नहीं छोड़ता। मन आत्मा के अनुकूल ही संसार के अनेकविधि कष्टों को प्राप्त करता है।

जिज्ञासु- मन से भिन्न आत्मा कैसे है?

Scanned with CamScanner

आचार्य-मन का प्रेरक आत्मा है। बिना चेतना पाये मन इन्द्रियों से विषयों का उपभोग नहीं करता। मन का स्वामी मन से भिन्न चेतन आत्मा है।

जिज्ञासु- मन आत्मा का शुद्ध सम्बन्ध कब होता है?

आचार्य-योग की ऊँची भूमि में जब मन पहुँच जाता है, तब पवित्र होकर आत्मा के साथ निवास करता है और आत्मा मन से अपने अनुकूल स्वतन्त्र इससे कार्य करता है। यह ज्ञान-योग द्वारा प्राप्त होगा और योगी, मनस्वी प्रकृति के सारे कार्यों को करके ब्रह्माश्रित होकर जल-कमलवत् संसार में असंग रहता है। यह योग की महान् महिमा है।

जिज्ञासु- मन तो प्राकृतिक वस्तु है?

आचार्य-मन आगन्तुक चेतन है। मन का आधार, कारण अक्षरब्रह्म है। इसलिए मन का कारण जानकर मन को उसमें शान्त कर योगी अमृत, परमानन्द को प्राप्त करता है।

जिज्ञासु- मन का उद्गम कहाँ से होता है?

आचार्य-जब आत्मा प्रकृति का सम्बन्ध करता है, तब सबसे पहले जगत्-कार्यों के लिए मन का सम्बन्ध होता है।

जिज्ञासु- मन, चित्त एक हैं या दो?

आचार्य-मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार– ये चार अन्तःकरण हैं।

जिज्ञासु- चारों अन्तःकरण के कार्य क्या हैं?

आचार्य-चित्त का चिन्तन, मन का मनन, बुद्धि का विवेचन और अहंकार का अहंपना।

जिज्ञासु- वाह्यकरण क्या हैं?

आचार्य-पाँच ज्ञानेन्द्रिय-- आँख, कान, नाक, जिह्वा, त्वचा और पाँच कर्मेन्द्रिय– हाथ, पैर, गुदा, लिंग, वार्णा हैं।

जिज्ञासु- शरीर में आत्मा का स्थान कहाँ है?

आचार्य- हृदय-प्रदेश में आत्मा का स्थान है। आत्मा एक देश में रहकर शरीर-सम्बन्धी समस्त क्रियाओं को करता है।

जिज्ञासु- *आत्मा इन्द्रियों के बिना कार्य नहीं करता है?*

आचार्य- बिना सहायक, साधन के के कर्त्ता स्वयं क्रिया नहीं करता, इसलिए प्राकृतिक जगत् में कार्य करने के लिए बाह्यकरण इन्द्रियगण हैं। जिसके द्वारा आत्मा इन करणों से जगत् के समस्त कार्यों को करके उसका उपभोग कर दुःख-सुख को प्राप्त करता है। इसलिए आत्मा के प्राकृतिक जड़ करण हैं, जिनके द्वारा वह भौतिक क्रियाओं को करता है।

जिज्ञासु- *इन्द्रियाँ जड़ हैं और आत्मा चेतन है, इसका सम्बन्ध नित्य कैसे है?*

आचार्य- प्रकृति का सम्बन्ध अज्ञान, मोह से है। जब ज्ञान हो जाता है, तब आत्मा इन्द्रिय जगत् से उपरम होकर अपने चेतनस्वरूप में स्थित हो परमानन्द को प्राप्त करता है।

जिज्ञासु- *अज्ञान का कारण क्या है?*

आचार्य- इन्द्रियों में दोष और संस्कार में दोषों से अविद्या अर्थात् अज्ञान प्रकट होता है। इसीलिये ज्ञान की प्राप्ति के लिये जितेन्द्रिय हो विषय-राग से उपरम हो संस्कारों के साथ के लिए योग का साधन करना चाहिए।

जिज्ञासु- *चित्त में संस्कार है या मन में?*

आचार्य- समस्त कर्म-संस्कार चित्त में स्थित हैं, उसी को लेकर मन इन्द्रियों से कार्य करता है। विषयोपभोग की क्रिया मन द्वारा होती है, परन्तु उपभोग की संस्कार सामग्री अनेक जन्मों से चित्त में रखी हुई है।

जिज्ञासु- *ज्ञान होने पर भी प्राणी बुरे कर्म में प्रवृत्त रहते हैं?*

आचार्य- ज्ञान होने पर बुरे कर्म नहीं होते, बल्कि वह क्षणिक ज्ञान स्थिर न होकर थोड़े से संसर्ग और मोह-वासना के विषय-आवरण से ढँप जाता है और इन्द्रियाँ विषयों की ओर दौड़ने लगती हैं। वास्तविक

Scanned with CamScanner

ज्ञान और सत्य प्रकाश प्राप्त होने पर मनुष्य कभी भी बुरे कर्मों में प्रवृत्त नहीं हो सकता।

जिज्ञासु- ज्ञान के स्थिर रहने का उपाय क्या है?

आचार्य- ज्ञान के साथ जब वैराग्य हो और निरन्तर एक-सी प्रभु में भक्ति की धारा प्रवाहित रहे और सद्गुरु-आदेश, नियम में जीवन चलने से ज्ञान सदैव स्थिर रहता है और अन्तर दिव्य प्रकाश के मिल जाने पर सदैव आत्मा प्रबुद्ध, चैतन्य रहती है। उसमें किसी प्रकार का मोह-आवरण नहीं आने पाता।

जिज्ञासु- ज्ञान कब होता है?

आचार्य- जब योग के विधान द्वारा कुण्डलिनी के टल जाने पर योगी को सुष्मन-प्रवाह द्वारा अन्तर-कपाल के शिखर से दिव्य ज्ञान का स्रोत प्रकट हो जाता है, उसी अवस्था में पूर्णज्ञान जीवात्मा के अन्दर आने लगता है। वेदों में ब्रह्मविद्या के दो स्तन जो कहे गये हैं, उसी समय योगी उन स्तनों से ब्रह्मविद्या का अमृत-प्रवाह प्राप्त करता है।

जिज्ञासु- ज्ञान की अनेक कोटियाँ होती हैं?

आचार्य- आत्मा जिस भूमि पर रहता है, उसके अनुसार उसे ज्ञान प्रकट रहते हैं। आत्माओं की अनेक कोटियाँ हैं। इसलिए उसके अनुसार अनेक ज्ञान के स्तर भी हैं, परन्तु वास्तविक ज्ञान एक है, जो योग के विशुद्ध अवस्था में विहंगम योग-समाधि द्वारा प्रकट होता है।

जिज्ञासु- आत्मा तो एक जाति है, तब कोटियाँ अनेक कैसे हो गयीं?

आचार्य- आत्मा एक है परन्तु कर्म, गुण, स्वभाव के भेद से अनेक प्रकार के हैं। इसलिए कर्म की विभिन्नता से आत्मायें अनेक कोटि की होती हैं।

जिज्ञासु- आत्मा का स्वरूप क्या है?

आचार्य- आत्मा का प्राकृतिक कोई स्वरूप नहीं है। यह चेतन, कूटस्थ है।

Scanned with CamScanner

आत्मा अपने स्वरूप को अपने स्वयं अनुभव करता है, जब उससे प्राकृतिक आवरण टल जाता है।

जिज्ञासु- आत्मा के नित्य गुण कौन हैं?

आचार्य- ज्ञान, इच्छा, प्रयत्न– ये आत्म के अन्दर सदैव रहते हैं। कूटस्थ होने से उसके चेतन स्वरूप में परिवर्तन नहीं रहता।

जिज्ञासु- आत्मा तो ब्रह्म को कहते हैं?

आचार्य- आत्मा शब्द का अर्थ प्रकरण और प्रसंग के अनुसार किया जाता है। आत्मा जीव को कहते हैं और इसका अर्थ ब्रह्म में भी होता है।

जिज्ञासु- जीवात्मा के अन्दर चेतन गुण है, तब प्रकृति के गुण उसमें कैसे आ गये?

आचार्य- आत्मा नित्य होने से अपनी अल्पज्ञता से प्रकृति का सम्बन्ध कर लेता है, तब उसके अविवेक सम्बन्ध से प्रकृति के गुण प्रकृति-संसार में प्रकट होते हैं।

जिज्ञासु- आत्मा के करण चेतन हैं?

आचार्य- प्रकृति में आत्मा के जड़ करण हैं, इन्हीं करणों द्वारा वह जगत् की क्रियाओं को करता है।

जिज्ञासु- शुद्ध आत्मा चेतन करण से क्या करता है?

आचार्य- परमानन्द का उपभोग और चेतन प्रकाश में अपने अन्दर महान् शक्ति, ऐश्वर्य को प्राप्त कर कृतकृत्य हो जाता है।

जिज्ञासु- जीव के अन्दर भोग की इच्छा क्यों होती है?

आचार्य- चिरकाल से भोगे हुए विषय जब देखते हैं, तब उसे भोगने की इच्छा जीव में होती है, उसी को राग कहते हैं। इसी राग में विषयी जीव अधोपतन हो अपने जीवन को नष्ट कर देते हैं।

Scanned with CamScanner

जिज्ञासु- वैराग्य क्या है?

आचार्य- भोग की इच्छाओं का नितान्त त्याग होना वैराग्य है। बिना वैराग्य के भोगों से उपरमता नहीं होती।

जिज्ञासु- आत्मा का उत्थान कैसे होता है?

आचार्य- जब पूर्ण विवेक होकर जितेन्द्रिय तपस्वी जीवन से प्रकृति के गुणों को अपने से हटाकर शुद्ध चेतन शक्तियों का संग्रह होगा, तब आत्मा योग विज्ञान से पूर्ण बलवान् हो दिव्य जीवन और पवित्र शान्ति को प्राप्त करता है।

जिज्ञासु- योग की स्थिति में जब जीवात्मा आगे बढ़ती जाती हैं, तब फिर नीचे पतन क्यों हो जाता है?

आचार्य- बुरे संस्कार नष्ट हो जाने पर भी उसमें उसका लेश रहता है, जिसके कारण उसके जागृत होने पर फिर आत्मा विषय-राग में प्रवृत्त हो जाती है। इसी को योगभ्रष्ट या अधोपतन कहते हैं।

जिज्ञासु- योग में विघ्नें क्यों होती हैं?

आचार्य- पूर्व के किये हुए अपने अच्छे-बुरे कर्म भोग में प्राप्त होने लगते हैं और विषय की इच्छा से चित्त में सदैव चंचलता बनी रहती है। इसलिए वैराग्यहीन, अजितेन्द्रिय पुरुष सदैव भोग-लिप्सा से व्यग्र हो संसार में अनेक कष्ट-परिताप, अपवाद से ग्रसित होकर दुःखमम जीवन व्यतीत करता है।

जिज्ञासु- कर्म का क्षय होने पर आत्मा का स्वरूप क्या रहता है?

आचार्य- चेतन, कूटस्थ दिव्य-प्रकाश में आत्मा आनन्दित रहता है। अपने स्वतन्त्र शक्ति का अनुभव करता है।

जिज्ञासु- कर्म तो इन्द्रियों से होते हैं। आत्मा चेतन होकर उसके बन्धन में कैसे आ जाता है?

Scanned with CamScanner

आचार्य- इन्द्रियाँ जड़ हैं। आत्मा चेतन होने से ही इन जड़करणों से अपना कार्य करता है और आत्मा के ये प्राकृतिक कार्य बन्धन के हेतु होते हैं। आत्मा के जड़ कर्म और चेतन कर्म दोनों अविवेक और ज्ञान-अवस्था में होते हैं।

जिज्ञासु- *इन्द्रियों में जो शक्ति है, वह आत्मा की है या प्रकृति की?*

आचार्य- इन्द्रियों में प्राकृतिक शक्ति है, परन्तु वह जड़ शक्ति है जो आत्मा के संयोग से प्रकट होती है और आत्मा इन शक्तियों से संसार-सुख का उपभोग करता है। बिना चेतन से संयोग से जड़ पदार्थों में स्वयं क्रिया नहीं होती। संसार के सारे कार्य ब्रह्म, जीव, प्रकृति– इस तीनों पदार्थों से मिश्रण से होते हैं। ब्रह्मशक्ति समस्त कार्यों को पूर्ण करती है। आत्मा चेतन और स्वतन्त्र होने से प्रकृति द्वारा अपने कर्म को करता है। प्रकृति भी स्वतन्त्र न होने से आत्मा के अधीन हो, उसके अनुकूल कार्य करती है। इसलिए प्रकृति के प्रत्येक कार्यों में ब्रह्मशक्ति की उपासना की आवश्यकता है। जीव उसी के बल से अपने स्वतन्त्र कर्मों को करके संसार-लिप्सा को पूर्ण करता है।

जिज्ञासु- *द्वेष क्यों होता है?*

आचार्य- जिन पदार्थों में कष्ट हो चुका है, वे पदार्थ जब स्मरण होते हैं, तब चित्त में क्रोध उत्पन्न होता है, इसी का नाम द्वेष है। द्वेष सभी आत्माओं में हैं। दुःख और द्वेष-- ये दो गुण आत्मा, प्रकृति के सम्बन्ध से हो जाते हैं। शुद्ध आत्मा में ये दोनों गुण नहीं हैं।

जिज्ञासु- *राग क्या है?*

आचार्य- विषय-भोग की इच्छा राग है। इन्द्रिय-सुख सदैव बना रहे, ऐसे भोग की इच्छा को राग कहते हैं।

जिज्ञासु- *राग-द्वेष का नाश कैसे होगा?*

आचार्य- पूर्ण ज्ञान-वैराग्य के हो जाने पर जब सद्गुरु-शरण में रह, प्रभु की

भक्ति की जाती है, तब सभी क्लेशों का नाश होता है और दुःखों से निवृत्ति होकर परमसुख, वास्तविक आनन्द को प्राप्त करता है।

जिज्ञासु- ***प्रत्याहार क्या है?***

आचार्य- आत्मा के अधीन इन्द्रियों के व्यवहार होने को प्रत्याहार कहते हैं। अन्तर्मुख स्थिति होने पर आत्मा के अनुकूल ही इन्द्रियाँ कार्य करती हैं। हठयोगी मन को अनुकूल रखने को प्रत्याहार कहते हैं। प्राण, मन स्थिर होने पर स्वाभाविक इन्द्रियाँ शान्त होकर अपने अनुकूल वर्तती हैं।

जिज्ञासु- ***प्राकृतिक योगी में इन्द्रियसंयम कैसे होता है?***

आचार्य- वह प्रकृति के सुखों को भोगकर अपने प्रकृति स्थित शक्तियों का संग्रह करता है। प्राकृतिक योगी में योग की इच्छा होने पर दुःख और कष्ट की प्राप्ति होती है और जीवन अत्यन्त अशान्त बना रहता है। इसलिए सिद्धि-विभूतियों को द्वारा प्राकृतिक सुखों का नितान्त त्यागकर वैराग्य द्वारा महाप्रभु की भक्ति करनी चाहिए। योगी का प्राकृतिक जीवन संयमी होना चाहिए। बिना संयमी होने से बहिर्मुखं शक्तियाँ अधिक बलवान् हो जायेंगी और उससे विषय-राग बढ़ता जायेगा। अस्तबल में बँधा हुआ घोड़ा जब बाहर निकल जायेगा, तब अपने विषय-राग में अधिक दौड़ेगा और जीवनहीन हो जायेगा। प्रकृति के क्षेत्र में योग का जीवन संयमी होना आवश्यक है।

जिज्ञासु- ***संयम का अर्थ क्या है?***

आचार्य- मन-इन्द्रियों को अपने अनुकूल रख, उससे उचित कार्य करना संयम है। सदाचार, जितेन्द्रियत्व धर्म के पालन से इन्द्रियों का संयम होता है। संयमी पुरुष ही लोक-परलोक समस्त ऐश्वर्यों को प्राप्तकर जीवन को महान् और यशस्वी बनाता है।

जिज्ञासु- ***योग की प्रथम कोटि क्या है?***

Scanned with CamScanner

आचार्य- मन को इन्द्रियों के साथ अन्तर्मुख करने की स्थिति योग की प्रथम कोटि में होती है। अन्दर-मन हो जाने वाली क्रिया योग के प्रारम्भ में होती है और मन को साधक पकड़ता है। घूमते हुए मन को पकड़ने का साधन योग के प्रथम कोटि में होता है।

जिज्ञासु- ***हम कैसे मानेंगे कि आप प्रकृति के परे जगत् में रहते हैं?***

आचार्य- जब आप स्वतः योगाभ्यास के द्वारा मन, इन्द्रियों से भिन्न आत्मा को जान पायेंगे और अपनी चेतना को परब्रह्म में केन्द्रित कर प्रकृति पर विजय प्राप्त कर लेंगे।

जिज्ञासु- ***नहीं, नहीं। हम कहते हैं कि हम कैसे जान पायेंगे कि प्रकृति में आप नहीं हैं?***

आचार्य- जब आप भी मेरी स्थिति को प्राप्त होकर आत्मा को सारे देह-संघात से पृथक् अनुभव करेंगे। किसी भी क्षेत्र के ज्ञान के लिए उस क्षेत्र में जाकर, उसके अनुरूप जीवन बनाकर उसी की स्थिति में उसकी यथार्थता को कोई जान सकता है, दूसरा कोई साधन नहीं है।

जिज्ञासु- ***ऐसा करना बड़ा कठिन है?***

आचार्य- यह तो वैज्ञानिक अनुभव की चीज है। बिना अनुभव किये सूक्ष्म विषयों का यथार्थ निर्णय नहीं होता। बाहरी बातों की जानकारी करने से वास्तविकता की परख हम नहीं कर सकते। वैज्ञानिक वस्तु वैज्ञानिक साधनों के द्वारा जानी जा सकती है।

जिज्ञासु- ***कोई खास इसका निर्णय नहीं कि आप प्रकृति से परे कैसे हैं?***

आचार्य- दरिद्र, धनी का पहले तो निर्णय नहीं कर सकता। यदि निर्णय कर सकेगा तो वह भी बाल-विनोद मात्र ही होगा। धनी का निर्णय धनी, विद्वान् का निर्णय विद्वान्, योगी-सन्तों का निर्णय योगी-सन्त ही कर सकते हैं। हीरा की परख जौहरी

करता है और वही उसके पारख तत्त्व को पूर्णरूप से जानने वाला है।

जिज्ञासु- *यह स्पष्ट नहीं होता कि प्रकृति पर सन्त की विजय कैसे होती है और उसकी पहचान क्या है?*

आचार्य- आप क्या करते हैं?

जिज्ञासु- *मेरे बहुत से काम हैं, उसको क्या बतलावें?*

आचार्य- जब आप छोटी-सी व्यावहारिक बात को समझाने या बतलाने में असमर्थ हैं, तब मेरे इस गहन विषय को कैसे समझ पायेंगे?

जिज्ञासु- *सबका व्यवहार तो समान ही है, निर्णय क्या होगा?*

आचार्य- पारदर्शी विद्वान्-सन्त को सर्व पदार्थों का साक्षात्कार होता है और वे सन्त, योगिश्वरों की पारख कर लेते हैं। सन्त को सन्त और विद्वान् को विद्वान् पहिचान लेता है। आप सन्त बनें, तब सन्तों की पहिचान करेंगे और सन्तों के मर्म-रहस्य को जान सकेंगे।

जिज्ञासु- *इन्द्रियों पर विजय होती है, पर देखने में नहीं आती?*

आचार्य- आप तो स्वतः विजय के लक्षण भी जानते हैं और निर्णय भी कर लेते हैं। फिर दूसरों के समय नष्ट करने का क्या अभिप्राय है? इन्द्रियाँ अपने अधीन हैं और में मैं इसका स्वामी हूँ। यह ज्ञान आपको बिना साधन-अभ्यास के कैसे हो सकेगा? जबकि आप प्रकृति के विषय-तरंगों में अपने को बहाकर, अपनी जीवन-नौका को दुर्बल बनाये जा रहे हैं। एक मिनट भी बुद्धि में स्थिरता नहीं, चारों ओर शंका की नदी बह रही है। इस अवस्था में सत्य का निर्णय और सन्तों की पहिचान क्या कर सकेंगे?

जिज्ञासु- *नहीं! नहीं! यह बात नहीं है। विषय प्राप्त कर लेने पर सब शरीर आदि अपने अधीन रहते हैं और योगी मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेता है।*

आचार्य- हाँ ठीक है। विजय प्राप्त कर लिया है, परन्तु इसकी कसौटी तो उसके पास है, जिसने अपने जीवन और मृत्यु के रहस्य को जान लिया है एवं जिसकी आत्मा प्रकृति से परे जग में लवलीन रहती है। मैं पहिले बता चुका हूँ, योगी की पहिचान करने के लिए योगी बनना पड़ेगा, तब मृत्यु और जीवन के तत्त्वों को जान सकेंगे और यथार्थ सत्य को पहिचान सकेंगे। वेदों में इस प्रकार की ऋचाएँ आयी हुई हैं कि योगी मृत्युञ्जय या अमरत्व को प्राप्त कर सकते हैं। यही वैदिक सन्तों का सत्य सिद्धान्त है कि जिन्होंने आत्मा तथा प्रकृति के सारे तत्त्वों को जानकर प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त कर लिया है एवं जो प्रकृति के कारण सम्बन्ध और विच्छेद-रहस्यों को जान चुका है, वही पूर्ण योगी है और पूर्ण अध्यात्मवेत्ता है। आप सत्संग करें। सेवा और भजन द्वारा गुरु की शरण रह, जीवन को आध्यात्मिक-क्षेत्र में चलावें, तब आपको स्वतः अध्यात्मविद्या के गुह्य रहस्यों का बोध होगा एवं यथार्थ, सत्य सिद्धान्त की प्राप्ति होगी। आध्यात्मिक जगत् के समस्त विषयों के बोध के लिए सत्संग, सद्गुरु की शरण की अत्यन्त आवश्यकता है, जिसके द्वारा समस्त पदार्थों का बोध एवं आत्मिक सुख-शान्ति की प्राप्ति होती है। सन्तों की पहिचान करने की कसौटी उन्हीं के पास है। बाहर से अन्तर का ज्ञान नहीं हो सकता। शरीर एवं मन, इन्द्रियों के जीतने और अपने अधीन रखने का यह अभिप्राय नहीं है कि इनसे कोई कार्य न लिया जाय। इनसे योगी कार्य लेता है और कार्य करता है, जो सर्वसामान्य जगत् के मनुष्यों को सांसारिकमय विदित होता है। परन्तु योगीजन सारे देह-संघात से अलग अपने आध्यात्मिक केन्द्र पर स्थित होकर ही सारे देह-संघात का संचालन करते हैं। ये कर्मबद्ध जीवों के समान वासना-संस्कार से वशीभूत होकर उन कार्यों को नहीं करते, बल्कि अपने पवित्र संकल्प से प्राकृतिक धर्मों का पालन करते हुए आध्यात्मिक, विशुद्ध, निर्लिप्त कर्मों को करते हैं, जो अवस्था

Scanned with CamScanner

अत्यन्त सर्वोत्कृष्ट और दुर्लभ है। यही गीता और सद्ग्रन्थों का रहस्यपूर्ण मत है।

जिज्ञासु- बड़ा कठिन प्रश्न है? ठीक है निर्लेप रहते हैं, परन्तु कैसे निर्लेप हैं? समझ में नहीं आता।

आचार्य- मैंने सब बातें बतला दीं। यह सत्संग के अतिरिक्त स्थिर बुद्धि होकर आध्यात्मिक-क्षेत्र में आकर अपने जीवन को चलावें तब सब बातों का स्पष्ट बोध हो जायेगा। देखने या तर्क-वितर्क से इसका ज्ञान नहीं हो सकता। सत्संग-योगाभ्यास के द्वारा समाधि-अनुभव में सब वस्तुओं का यथार्थ बोध होता है, वचन-विलास से नहीं।

जिज्ञासु- पहचान नहीं होता कि सन्त हैं?

आचार्य- श्रद्धालु, अनुरागी जिज्ञासुओं को अपने गुरु या सन्तों की पहचान सरल होती है। बछड़े को गौ की पहचान या कोयल के कुहुक की पहचान उसके बच्चे कर लेते हैं। पुत्र का माता की पहचान और पत्नी को पति की पहचान हो जाती है, इसी प्रकार जिज्ञासु, अनुरागियों को सन्त-योगिश्वरों की पहचान हो जाती है, कोई कठिनाई नहीं होती। सोना-चाँदी आदि भौतिक पदार्थों की पहचान सबलोग ठीक से नहीं करते, परन्तु उसके जानने वाले कर ही लेते हैं। सबकी कसौटी अपने-अपने क्षेत्रों में है, परन्तु सन्त-योगिश्वरों के परखने की कसौटी बाजारों में नहीं बिकती, वह तो सन्त-योगीश्वरों के ही पास है। उन्हीं की शरणागत और अध्यात्मनिष्ठा से आपके अन्तःकरण की मैल धुलेगी और आत्मा पवित्र एवं पुष्ट होकर समस्त पदार्थ की पूरी जानकारी प्राप्त कर लेगी। इसलिए गुरु की शरण में रहकर अपने यथार्थ जीवन को आगे बढ़ावें। सर्व संशय निवृत्त होगा और तत्त्वज्ञान की शीघ्र प्राप्ति होगी।

Scanned with CamScanner

जिज्ञासु- *आत्मा चेतन है, तब उसे बाल्य-अवस्था में ही ज्ञान क्यों नहीं हो जाता?*

आचार्य- जिसमें आप ज्ञान देख रहे हैं, वह ज्ञान बाल्य-अवस्था के भी पहले से चला आ रहा है और शरीर, इन्द्रियाँ, बुद्धि आदि प्राकृतिक वस्तुएँ हैं। इनका विकास क्रमशः किशोर-तरुणादि अवस्थाओं को प्राप्त होता हुआ अन्त में वृद्धावस्था को प्राप्त होता है। वास्तव में आत्मा की अवस्था नहीं होती। षट् विकार वाली देह की छः अवस्था होती है, जिसका कारण परिणामिनी प्रकृति है।

जिज्ञासु- *आत्मा में ज्ञान नित्य है?*

आचार्य- अपनी सत्ता स्थिति उसकी सदैव है, परन्तु क्या बाल-वृद्ध और क्या जन्म-मृत्यु, आवागमन प्रत्येक अवस्था में होते हुए भी वह चेतन, नित्य, कूटस्थ कहा गया है, परन्तु ज्ञान को प्रकट करने वाले गुरु मिलने पर ही ज्ञान का विकास होता है और यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति होती है। बालक क्या, तरुण और वृद्ध को भी ज्ञान देखने में नहीं आती। मोहावरण और प्रकृति के त्रिगुणों के भाव से आत्मा का ज्ञान ढँपा रहता है और उसमें अपने ज्ञान की सुधि नहीं रहती। बाह्यज्ञान के सम्बन्ध होने पर विषयों की प्राप्ति और इच्छाओं का प्रादुर्भाव होने लगता है। ऐसे बाल्य-अवस्था से विकास होते-होते सारे प्रकृति तत्त्वों का विकास होता है एवं बुद्धि के प्रौढ़ावस्था में संसार के ज्ञान की दृढ़ स्थिति हो जाती है।

जिज्ञासु- *गर्भ में या उस जन्म का ज्ञान जीवात्मा को नहीं रहता?*

आचार्य- अपने चेतनत्व का ज्ञान रहता है, परन्तु अपने स्वरूप का वास्तविक ज्ञान योगजन्य विशेष अवस्था में, जहाँ पर प्रकृति का सम्बन्ध छूट जाता है, तब होता है। प्रकृति के अनेक परदे आवरण आते रहते हैं। ज्ञान की स्मृति एकरूप से नहीं रहती, परन्तु कर्मों के संस्कार-वासनाएँ जीवों के साथ रहती हैं। ज्ञान तब होता है, जब ज्ञान का प्रदाता गुरु होता है।

Scanned with CamScanner

जिज्ञासु- ***ज्ञान उत्पन्न होने की तब प्रौढ़ अवस्था ही है?***

आचार्य- नहीं! आत्मा में ज्ञान होने की कोई अवस्था नहीं है। आत्मा में ज्ञान प्रत्येक अवस्थाओं में हो सकता है। पूर्व संस्कारी आत्माओं को बाल्यकाल में ही गुरु मिल जाने पर पूर्णज्ञान हो सकता है। *'न काल नियमो वामदेववत्'* -सांख्यसूत्र। वामदेव ऋषि के नाई ज्ञान की कोई अवस्था नहीं। किसी भी अवस्था में ज्ञान प्रकट हो सकता है, जैसे अल्पकाल में ही देव, ऋषि को हुआ।

जिज्ञासु- ***जब प्रकृति से परे योगी की गति हो जाती है, तब उसको प्रकृति की अवस्थाएँ नहीं बदलतीं?***

आचार्य- प्रकृति के परे योगी अपनी आत्मिक चेतना के द्वारा परब्रह्म का साक्षात्कार करता है। आत्मा की अवस्था नहीं बदलती। शरीर की अवस्था बदलती है, क्योंकि वह प्रकृति के अणुओं के संयोग से मायिक ढाँचे से तैयार हुई है। उसका अवश्य परिवर्तन होगा, क्योंकि प्रकृति का कार्य सदैव अनित्य है। कारणशील पदार्थ अनित्य होते हैं, परन्तु योगी अपनी इच्छा के अनुकूल अपने शरीर को दीर्घकाल तक स्थिर रख सकता है और योगी की यही पहिचान है।

जिज्ञासु- ***उसकी मृत्यु नहीं होती?***

आचार्य- जिसका जन्म है, उसकी मृत्यु अवश्य है। जिसके निर्माण का समय है, उसके विनाश की अवधि भी निश्चित है, परन्तु योगी की मृत्यु कर्मबद्ध वासना के अनुकूल न होकर स्वतन्त्र, अपनी इच्छा से होती है, यही महत्त्व है।

जिज्ञासु- ***षट् विकार उसमें अवश्य होनी चाहिए?***

आचार्य- जब उसकी बाल, कुमार और तरुण अवस्था प्रकृति की होती है, तब और भी अवस्थाएँ अवश्य होंगी। शरीर का जो धर्म है, वे अवश्य होंगे, परन्तु वह अकर्म कर्त्ता होकर संसार

Scanned with CamScanner

में निर्लिप्त रहेगा। षट् विकार शरीर से सम्बन्धित प्राकृतिक अवस्थाएँ हैं, योगी आत्मा की नहीं। योगी किसी भी अवस्था में अपने शरीर को रख सकता है और जीवन्मुक्ति में सारे संसार का कल्याण कर परमानन्द में निमग्न रहता है।

जिज्ञासु- ईश्वर के ज्ञान होने पर सर्व पदार्थों का ज्ञान हो जाता है?

आचार्य- जीव एकदेशीय है, उसकी चेतना जब ब्रह्म में प्रवाहित होती है, तब वह ब्रह्म का प्रत्यक्ष करता है और उसके प्राण, इन्द्रिय, शरीर में ब्रह्मतेज की अप्राकृतिक प्रभा सदैव प्रभावित रहती है। वह दिव्य प्रभा के प्रकाश एवं शक्तियों के उपयोग से विश्व में अनेक अलौकिक कार्यों को कर सकता है। विशुद्ध आत्मा की दैवी शक्ति जिस पदार्थ पर या जिस प्रदेश में गमन करती है, उसका यथार्थज्ञान उसे हो जाता है। ब्रह्म के आधार से सृष्टि की सारी क्रियाएँ होती हैं। अतएव ब्रह्म के जान लेने पर सारे पदार्थों का ज्ञान उस योगी को हो जाता है, जिस पदार्थ की ओर उसकी दिव्यदृष्टि जाती है।

जिज्ञासु- सब वस्तुओं का प्रत्यक्ष एक अवस्था में होगी?

आचार्य- आत्मा की एकदेशीय चेतना होगी, क्योंकि वह एकदेशीय है। परन्तु किसी विशेष या महानशील अवस्था में योगी अपने अनेक रूपों को एक काल में प्रकट कर सकता है, परन्तु यह अवस्था नैमित्तिक है।

जिज्ञासु- यह बात कैसी है? ब्रह्म के जान लेने पर शेष क्या जानना रहा?

आचार्य- ठीक है! सब पदार्थों का प्रकाश ब्रह्म से होता है। समस्त ज्ञानों का आधार ईश्वर है और उस ईश्वर का ज्ञान भी ऋषियों के द्वारा ही संसार में प्रकट होता है। इस प्रकार पदार्थों तथा तत्त्वज्ञानों का बोध योगियों को ही होता है। संसार, समाज-नीति की शिक्षा ऋषियों ने ही दी है। संसार और ब्रह्म दोनों का प्रकाश-ज्ञान ब्रह्मविद्या ऋषिगण ही देते हैं। ज्ञानों का मूल ईश्वर है। उस ज्ञान के मूलस्रोत ईश्वर के जान लेने पर सब ज्ञानों का बोध हो जाता

Scanned with CamScanner

है। इस आधार पर योगियों को समस्त पदार्थों का ज्ञान होता है और वे अपने दिव्य-दृष्टि को जिन पदार्थों की ओर करते हैं, उन पदार्थों का यथार्थ बोध हो जाता है। महर्षि कणाद ने अपने वैशेषिक में तथा *"द्रव्यान्तरेषु प्रत्यक्षं"* कहकर इस संशय की निवृत्ति कर दिया है अर्थात् योगी की आत्मा प्रत्यक्ष के बाद जिन पृथ्वी आदि भौगोलिक पदार्थों पर दृष्टि जाती है, उसका भी प्रत्यक्ष हो जाता है। आत्मा के सामने कोई आवरण न रहने से समस्त ज्ञानों का आधार ईश्वर का प्रत्यक्ष होना है। इसलिए उस पवित्र आत्मा में किसी भी वस्तु में भ्रम नहीं हो सकता।

जिज्ञासु- ***ज्ञान में कमी-बेशी न्यूनाधिकता देखी जाती है?***

आचार्य- सत्त्व, रज, तम-- ये तीन प्रकृति के गुण हैं। जिन गुणों का जिस काल में प्रभाव रहता है, उसके अनुकूल जीव की क्रिया, चेष्टा होती है। अतएव त्रिगुणों की अवस्था में तमोगुण, रजोगुण के प्रभाव या सतोगुण के प्रभाव से आत्मा में ज्ञान की अनेक अवस्थाएँ होती हैं। जिस गुण का जो प्रभाव है, उसके अनुकूल चित्त से, विषय-संस्कार के सम्बन्ध से, उसकी सारी क्रियाएँ होती हैं, परन्तु योगी त्रिगुणातीत् असंग रहते हैं। ये भाव बद्ध आत्माओं के हैं।

जिज्ञासु- ***आत्मा के चेतन होने से उसे बाल्य-अवस्था में ही ज्ञान की परिपक्व अवस्था हो जानी चाहिए?***

आचार्य- इसका उत्तर मैंने पहिले दिया है। प्रकृति के तत्त्व प्राकृतिक बल को पूर्ण करते हैं। बुद्धि प्राकृतिक वस्तु है। अन्न, जल, वायु के प्रभाव से ही शरीर, मन, प्राण बलिष्ट होते हैं। इसका सम्बन्ध प्रकृति से है। यौगिक बुद्धि या यौगिक क्रियाओं के प्रभाव से जो बुद्धि प्रकट होती है, वह विशेष बुद्धि है, जिसका प्रकाश विशुद्ध अवस्था में विशेष रूप से होता है। अतएव प्रकृति की पूर्ण अवस्था बाल्य-अवस्था में नहीं प्राप्त होती। अभी उसका विकास होता है। अतएव उस काल में भी परिपक्व ज्ञान सर्वसाधारण को प्राकृतिक

Scanned with CamScanner

नियम के अनुसार नहीं होता। परन्तु संस्कारी महान् आत्माओं को बाल्य-अवस्था में ही पूर्णज्ञान का उद्भास प्रकट होने लगता है। प्राकृतिक तत्त्व अपनी अवस्था में परिपक्व होकर ही प्रकृति का पूर्णतया विकास कर सकते हैं। अतएव योगाभ्यास द्वारा आत्म-उत्थान के साथ प्रकृति की भी दबी हुई शक्तियों का पुनः उत्पादन करें। यही योग-ऐश्वर्य और उनकी महान् महिमा है।

जिज्ञासु- आत्मा में ज्ञान तो सबको समान चाहिए?

आचार्य- गुणों के विभिन्नता से, गुणों के समान भाव न रहने से एक समान सबको ज्ञान नहीं हो सकता। कोटि-भेद से ज्ञान की प्राप्ति होती है और योगाभ्यास द्वारा क्रमशः अज्ञान-मोह की निवृत्ति और यथार्थज्ञान की प्राप्ति होती है, परन्तु आत्मा प्रत्यक्ष के बाद यथार्थ तत्त्व परब्रह्म-प्राप्ति का जो सत्य ज्ञान है, वह आत्मा के लिए सबको समान ही होगा, अलग-अलग नहीं।

जिज्ञासु- आत्मा में ज्ञान अनेक आत्माओं के होने से अनेक होंगे?

आचार्य- आत्मा में जो सत्य ज्ञान है, वह एक ही है। प्राकृतिक बुद्धि में त्रिगुणों के भाव से अनेक प्रकार की वैषम्य ज्ञान होते हैं। अलग-अलग ज्ञान प्राकृतिक बुद्धि में है, शुद्ध आत्मा में नहीं।

जिज्ञासु- ज्ञान की पूर्ण प्राप्ति कब मानी जायेगी?

आचार्य- जब ज्ञान की मूल स्रोत परब्रह्म की प्राप्ति हो जायेगी। ज्ञानस्वरूप ईश्वर है और उसी में समस्त ज्ञान केन्द्रित है।

जिज्ञासु- ज्ञान के लिए साधन होगा या ईश्वर-प्राप्ति के लिए?

आचार्य- एक ही साधन में सब पूर्ण होगा। ज्ञान होने से वैराग्य होगा और वैराग्य पूर्ण होने से भक्ति होगी। भक्ति की पूर्णता ही ज्ञान का उद्देश्य है और भक्ति के पूर्ण होने पर यथार्थज्ञान प्रकट होता है। जिसे ज्ञान मैं समझता हूँ, वह ब्रह्मज्ञान परमेश्वर के दर्शन होने से हो सकता है और दर्शन ही यथार्थज्ञान है।

Scanned with CamScanner

जिज्ञासु- साधन-अभ्यास की पूर्णता कब होगी?

आचार्य- जब साध्य ईश्वर की प्राप्ति हो जायेगी।

जिज्ञासु- ईश्वर का नाम क्या है?

आचार्य- वेदों में ईश्वर का सबसे श्रेष्ठ नाम ओ३म् है।

जिज्ञासु- ईश्वर किसे कहते हैं?

आचार्य- जिसके अन्दर ऐश्वर्य है, वही ईश्वर है।

जिज्ञासु- ईश्वर का लक्षण क्या है?

आचार्य- उत्पत्ति, पालन, लय जिसके द्वारा होता है वह ईश्वर है।

जिज्ञासु- ब्रह्म का लक्षण क्या है?

आचार्य- जो सबसे श्रेष्ठ अर्थात् बड़ा हो, वह ब्रह्म है।

जिज्ञासु- जो बड़ा है सो ब्रह्म है और जीव क्या है?

आचार्य- जीव ईश्वर से भिन्न दूसरी सत्ता है, जो प्रभु की उपासना द्वारा जन्म-मरण दुःख से छूटता है।

जिज्ञासु- ईश्वर के अनेक नाम क्यों हैं?

आचार्य- अनन्त कर्म, गुण, स्वभाव वाला ईश्वर है। इसलिए अनेक गुण, स्वभाव होने से उसके अनेक प्रकार के नाम होते हैं।

जिज्ञासु- ओ३म् तो ईश्वर का नाम है और ईश्वर क्या है?

आचार्य- ईश्वर अवाच्य है, उसका प्राकृतिक नाम रूप नहीं होता। वह अव्यक्त, अनुभवगम्य सत्ता है।

जिज्ञासु- अब ईश्वर का नाम नहीं होता तब आपने ओ३म् उसका नाम क्यों रखा?

आचार्य- ओ३म्, ब्रह्म, ईश्वर आदि सभी नाम उसके गुण विशिष्ट होने से बतलाये गये हैं। वास्तव में वह प्रभु भौतिक क्षर नाम से पृथक् अव्यक्त अनुभवगम्य है।

Scanned with CamScanner

जिज्ञासु- ओ३म् के अतिरिक्त और दूसरा नाम नहीं है?

आचार्य- ईश्वर के अनेक नाम है, परन्तु वेदों में सर्वश्रेष्ठ नाम ओ३म् ही है।

जिज्ञासु- ओ३म् का अर्थ क्या है?

आचार्य- रक्षा करना। जो प्रभु सारे संसार की रक्षा करता है, इसलिए उसे ओ३म् कहते हैं।

जिज्ञासु- ओ३म् के जप से क्या लाभ है?

आचार्य- जो नामी के नाम में गुण है, उसके जपने से वे गुण अपने में आते हैं और प्रभु के गुणों के स्मरण वर्णन करने से मन पवित्र होकर अन्तःकरण में ज्ञान का विकास और चित्त की एकाग्रता और वैराग्य होने से मानसिक शान्ति मिलती है।

जिज्ञासु- जप करने से मुक्ति नहीं होगी?

आचार्य- वाणी के द्वारा जप करने से पवित्रता, एकाग्रता लगेगी और प्रभु-प्रेम की वृद्धि होगा।

जिज्ञासु- मुक्ति कैसे होती है?

आचार्य- मन-वाणी से पृथक् होकर शुद्ध आत्मभूमि से प्रभु में अपने को दे देने पर अनन्यशरण भक्ति द्वारा प्रभु की प्राप्ति और जीवन्मुक्ति होती है।

जिज्ञासु- वाणी के साधन तो उत्तम हैं?

आचार्य- अपने वाणी, मन को शुद्ध कर सद्गुरुगम्य योगाभ्यास करना चाहिए।

जिज्ञासु- जो वाणी से जपा नहीं जाता, वह नाम क्या है?

आचार्य- वह अनुभवगम्य अक्षय नाम जिसके द्वारा आत्मा की त्रितपन शान्त होकर अन्तर में शीतल सोमरस का प्रवाह प्राप्त होता है।

जिज्ञासु- ब्रह्माण्ड में जो ओ३म् होता है, वही ईश्वर का स्वरूप है?

Scanned with CamScanner

आचार्य- नहीं! ब्रह्माण्ड में जितने नाम होते हैं, वे सभी भौतिक क्षर नाम हैं। ईश्वर के स्वरूप नहीं, न ईश्वर के प्राप्ति के साधन ही हैं।

जिज्ञासु- वाणी में जो नाम नहीं आता, उसका जाप कैसे होगा?

आचार्य- वाणी से जो जाप होता है, वह क्षर नाम है और जो अव्यक्त नाम अनुभव में जाना जाता है, वह वाणी का विषय नहीं है।

जिज्ञासु- मन को हृदय में लगाकर ओ३म् का जप किया जाय तो आत्मा पवित्र होगा?

आचार्य- ईश्वर के नाम के स्मरण से अनेक लाभ हैं और अनेक सुखों की प्राप्ति होती है, परन्तु आत्मा के कल्याण के लिए सभी क्षर नामों को छोड़कर प्रकृति से अलग हो शुद्ध चेतनस्वरूप से प्रभु की भक्ति करनी चाहिए।

जिज्ञासु- क्या जप भक्ति नहीं है?

आचार्य- ये सभी वाणी, मन के साधन कर्म हैं।

जिज्ञासु- कर्म क्या है?

आचार्य- आत्मा जो प्रकृति-आधार से या सम्बन्धित होकर रहता है, वे सभी बाहरी-भीतरी व्यवहार कर्म हैं।

जिज्ञासु- कर्म से क्या होता है?

आचार्य- बन्धन, जन्म-मरण, दु;ख की प्राप्ति।

जिज्ञासु- सभी कर्म दुःख के कारण होते हैं?

आचार्य- शुभ, उत्तम कर्म से सुख और बुरे, अनुचित, अशुभ कर्मों से दु;ख होता है।

जिज्ञासु- दुःख-सुख का क्या कारण है?

आचार्य- प्रकृति का व्यवहार में धर्म-अधर्म का जो व्यवहार होता है, उसके अनुसार जीवों को दुःख-सुख की प्राप्ति होती है।

Scanned with CamScanner

जिज्ञासु- धर्म से क्या लाभ है?

आचार्य- धर्म के पालन से जीवन-व्यवहारिक क्षेत्र उन्नतिशील होकर सुखमय रहता है।

जिज्ञासु- अधर्म से क्या हानि है?

आचार्य- जीवन अशान्त रहता है। राग, द्वेष, मोह, मात्सर्य, छल, कपट, पाखण्ड से आत्मा निन्दित कर्मों को करके नष्ट हो जाता है और मनुष्येतर योनियों को प्राप्त होकर महान् अधोगति को प्राप्त करता है।

जिज्ञासु- मोह क्या है?

आचार्य- आसक्ति, जिसके द्वारा प्राणी बन्धन में पड़कर अनेक कष्टों को क़रके भी उसको नहीं छोड़ना और अपार कष्ट सह जीवन को महान् अधोगति में ले जाता है।

जिज्ञासु- बन्धन क्या है?

आचार्य- विषयों की बार-बार इच्छा, जो चित्त के अन्दर बनी है, यही जीव के बन्धन का कारण है और जीव विषयासक्त होकर विषय के बन्धन में पड़कर नाना प्रकार कष्ट, परिताप को सहन करता है।

जिज्ञासु- पतन क्या है?

आचार्य- धर्म से विरुद्ध आचरण कर राग, द्वेष, लोभ, मोह से ग्रसित होकर नाना प्रकार के कुत्सित व्यवहार कर सदैव मान, प्रतिष्ठा और विषय के लिए लालाइत रहना जीवन का महान् पतन है।

जिज्ञासु- सत्य किसे कहते हैं?

आचार्य- जिसका कभी रूपान्तर न हो।

जिज्ञासु- जीवन का विकास धर्म से होता है वा ज्ञान से?

आचार्य- धर्माचरणयुक्त ज्ञान से जीवन सदैव विकसित रहता है। कोरा वाचक ज्ञान जो कर्तव्य से विहीन है, व्यर्थ है। इसलिए सदाचरण द्वारा धर्म, मर्यादा का पालन करना चाहिए।

जिज्ञासु- *वृत्तियाँ विषयों में जाती हैं, इसे रोकने का उपाय क्या है?*

आचार्य- विषयों की इच्छा जब नष्ट हो जाती है और प्रभु का अंकुर हृदय में उगने लगता है, तब विषयों से चित्त हटकर प्रभु के भजन में लगता है। जब तक वैराग्य नहीं होता, तब तक साधन नहीं होता। इसलिए वैराग्य को ज्ञान द्वारा धारण कर प्रभु का भजन करना चाहिए।

जिज्ञासु- *जीवन का उत्थान कैसे होगा।*

आचार्य- ज्ञान, वैराग्य द्वारा साधन और व्यवहार, समाज के उन्नतशील, विकसित रहने के लिए सदाचार, तपस्या, इन्द्रिय-संयम और शुद्धरूप से धर्म का पालन करने से जीवन का उत्थान होता है।

जिज्ञासु- *विहंगम मार्ग है या योग मार्ग?*

आचार्य- विहंगम पथ में जो योग होता है, उसे विहंगम योग कहते हैं। मार्ग से गमन होता है, इसलिए विहंगम पथ से आत्मा की शक्ति निराधार गमन करती है। इसलिए इस विहङ्गम योग पथ से चलने वाले योग को विहंगम योग कहते हैं।

जिज्ञासु- *जीवहिंसा क्या है?*

आचार्य- किसी जीवधारी प्राणी का बध करना हिंसा है।

जिज्ञासु- *अहिंसा क्या है?*

आचार्य- शरीर, मन, वाणी और आत्मा के द्वारा किसी को कष्ट न देना अहिंसा है?

जिज्ञासु- *अहिंसा से क्या लाभ है?*

आचार्य- अहिंसा के सिद्ध होने पर उसके समीपवर्ती व्यक्ति वैरभाव का त्याग कर देते हैं।

जिज्ञासु- चेतन आत्मा को कष्ट क्यों होता है?

आचार्य- प्रकृति-सम्बन्ध से आत्मा को कष्ट होता हैं। दुःख और द्वेष ये दो गुण प्रकृति के सम्बन्ध से आत्मा को प्राप्त होते हैं। प्रकृति से छूटकर ही आत्मा दुःख-द्वेष और परिताप से मुक्त होता है।

जिज्ञासु- अन्न में जीव है, उसके खाने से अन्न के आत्मा को कष्ट होगा, इसलिये यह एक हिंसा है?

आचार्य- अन्न जीव का भोज्य है। इसलिए इसमें यह हिंसा नहीं होती। प्रकृति, आत्मा, समाज के अनुसार जो कार्य होता है और उसमें कोई कष्ट हो तो वह हिंसा नहीं है। प्रकृति-विरुद्ध धर्म में हिंसा होती है। डाक्टर रोगी के आपरेशन द्वारा उसके कष्ट की निवृत्ति करता है और उस काल में रोगी को कष्ट होता है, परन्तु उस कष्ट के होने से डाक्टर द्वारा हिंसा नहीं होती है, बल्कि पूण्यलाभ होता है। बालक की आत्मा पढ़ने की नहीं होती। माता-पिता उसे बलपूर्वक पढ़ने के लिए बाध्य करते हैं। उस बालक को आरम्भिक कष्ट होने पर भी माता-पिता द्वारा हिंसा नहीं होती, बल्कि वह कष्ट बालक के लिए अमृत के समान है। जिस प्रकार अपने भोग्य पदार्थों के भोगने में दोष नहीं माना जाता, बल्कि उसके विपरित दोष, पाप माना जाता है और होता है, इसी प्रकार प्रकृति-व्यवहार के अनुसार जो जीवों को कष्ट होता है वह हिंसा नहीं है। स्त्री को प्रसव करने में महान् कष्ट क्या जीवन का कभी-कभी अन्त भी हो जाता है। इसलिए उस कष्ट का कारण, प्रदाता उसके पति को पाप लगे, इस हिंसा का उसे दण्ड दिया जाय ऐसा नहीं हो सकता। क्योंकि वह स्त्री, पुरुष का व्यवहार, प्रकृति-धर्म एवं समाज-व्यवस्था के अनुकूल है। इसलिए यह हिंसा नहीं हो सकती। जो एक

Scanned with CamScanner

संन्यासी का धर्म है, वह गृहस्थ का नहीं है। परस्त्रीगामी पापी होता है, परन्तु स्वस्त्रीगामी पापी नहीं कहा जाता। इसी प्रकार प्रकृति-धर्म के अनुसार आत्मा या शरीर की रक्षा के लिए जो कार्य होता है वह दोषयुक्त नहीं, उसमें हिंसा नहीं होती। वह आवश्यक और उचति व्यवहार है, उसमें हिंसा का दोष नहीं है। इसलिए भक्ष्य, भोज्य पदार्थों के उपभोग में जो कष्ट या हिंसा होती है, वह धर्म के अनुकूल है, हिंसा नहीं है।

जिज्ञासु- कर्म का नाश कब होता है?

आचार्य- जब प्रकृति का सम्बन्ध जीव से छूट जाता है। ज्ञान के पूर्ण होने पर कर्म की ग्रन्थि छूट जाती है और जीव बन्धन से मुक्त हो जाता है।

जिज्ञासु- जीव को ज्ञान क्यों नहीं होता?

आचार्य- विषयों के मोह-बन्धन में पड़ जाने से जीव को ज्ञान नहीं प्रकट होता। विषयासक्ति ही जीव-बन्धन का मूल कारण है।

जिज्ञासु- दोषों की निवृत्ति कैसे होगी?

आचार्य- सच्चरित्र हो, ज्ञान द्वारा मन को विचार देकर सत्संग, सेवा और उपासना से धीरे-धीरे जीवन के दोष-दुर्गुण दूर होते हैं। सच्चरित्रता, संयम, त्याग द्वारा सर्व अभिमान को छोड़कर चित्त की एकाग्रता से दोष दूर होते हैं।

जिज्ञासु- सन्ध्या का क्या अर्थ है?

आचार्य- जो दो वेलाओं के बीच में होती है, उसको सन्ध्या कहते हैं। रात्रि और दिन दोनों की संधि को सन्ध्या कहते हैं।

जिज्ञासु- उपासना का क्या अर्थ है?

आचार्य- सद्गुरुयुक्ति द्वारा समीप में ही जो ध्यान, स्मरण होता है, उसी को उपासना कहते हैं।

Scanned with CamScanner

जिज्ञासु- भक्ति क्या है?

आचार्य- ईश्वर के प्रति जो अत्यन्त प्रेम है, उसे भक्ति कहते हैं। वह भक्तियोग है, इसको उपासना भी कहते हैं।

जिज्ञासु- योग में तो कष्ट होता है और विघ्नें होती है?

आचार्य- अनेक प्रकार के योग है, उनमें अनेक विघ्नें, कठिनाइयाँ हैं। परन्तु सद्गुरु का सहज योग सरल, सुगम है, उसमें कठिनाई नहीं है। अधिकारी कोई भी स्त्री और पुरुष सद्गुरु-नियम, सिद्धान्त में रहकर सद्गुरु के मार्ग द्वारा सहज योग का अभ्यास कर सकते हैं। सहज योग जिसे विहंगम योग कहते हैं, यह सरल योग है। इसमें किसी प्रकार के बाहरी साधन और उपाय की आवश्यकता नहीं है।

जिज्ञासु- व्यक्त पदार्थ में ध्यान नहीं होता, तब होता क्या है?

आचार्य- व्यक्त पदार्थ में वृत्तियों की एकाग्रता से एक प्रकार की स्थूल धारण होती है, ध्यान नहीं। ध्यान सूक्ष्म विषय है, जिसे योगी लोग जानते हैं। आत्मा चेतन का ही ध्यान करता है। आत्मा और परब्रह्म दोनों चेतन, सजातीय वस्तु हैं। इसलिए चेतन, चेतन का ध्यान करता है।

जिज्ञासु- सद्गुरु की भक्ति क्या है?

आचार्य- सद्गुरुदेव के नियम, सिद्धान्त के अनुकूल अपने जीवन को चलाकर महाप्रभु की उपासना करना सद्गुरु देव की भक्ती है।

जिज्ञासु- सद्गुरु की पूजा क्या है?

आचार्य- सद्गुरु को आत्म-समर्पण कर गुरु-प्रदेश में निरन्तर गुरुमूर्ति का ध्यान कर सर्व ओर से प्रभु की सत्ता का अनुभव करना सद्गुरु की पूजा है।

जिज्ञासु- सद्गुरु की सेवा क्या है?

आचार्य- भूमण्ड़ल के जीवों को ब्रह्मविद्या का अमृत-उपदेश एवं सद्गुरु का संदेश दें, उन्हें अध्यात्म पथ पर लाकर परमानन्द प्राप्त कराना सद्गुरु की सेवा है।

Scanned with CamScanner

जिज्ञासु- *सद्गुरु का स्वरूप क्या है?*

आचार्य- जो स्वरूप अन्तर्जगत् में प्रकट होकर आत्मा की ग्रन्थि खोलकर चेतन दृश्य प्रकट कर देता है, वही मेरे आराध्य सद्गुरु का स्वरूप है। आत्मा उसी स्वरूप का चिन्तन, स्मरण कर अपने प्रदेश में स्थित हो अव्यक्त परमानन्द का आस्वादन करता है।

जिज्ञासु- *सद्गुरु की महिमा क्या है?*

आचार्य- जिनकी दिव्यदृष्टि से क्षणमात्र में अन्तर-कपाट खुल जाता है और सहज ध्वनि प्रकट होकर अमृत-परमानन्द की वर्षा करती है, उस व्यक्त सद्गुरु की महान् महिमा वाणी द्वारा नहीं प्रकट की जा सकती। इसे अनुभवी योगी ही जानता है और अनुभव करता है।

जिज्ञासु- *सद्गुरु का व्यक्त स्वरूप क्या है?*

आचार्य- जिस रूप में आत्मा के अन्दर उनकी दिव्य-शक्ति प्रकट होती है और जो स्वरुप अन्तराकाश में प्रकट होकर ब्रह्मप्रभा को प्रकट करता है, वह सदेहस्वरूप विदेह महाकाश में प्रबल शक्ति प्रदान करता है। यही सद्गुरु का व्यक्त स्वरूप है। जिस रूप से आत्मिक शक्ति जागृत होती है। इसी रूप के प्रकट होने पर सद्गुरु की महान् महिमा जानी जाती है और योगी को जीवन्मुक्त अवस्था प्राप्त होती है।

जिज्ञासु- *सद्गुरु का अव्यक्त स्वरूप क्या है?*

आचार्य- जब सद्गुरु की व्यक्त मुर्ति अपने प्रदेश में प्रकट होकर ब्रह्मप्रभा को प्रकट करके शब्दस्वरूप हो आनन्द की वर्षा करती है और अर्ध-उर्ध्व चारों ओर एक ही प्रकाश, एक ही आनन्द और एक ही तत्त्व की तन्मयता दृष्टिगोचर होती है। वही मेरे आराध्य सद्गुरु का अव्यक्तस्वरूप है, वही सद्गुरु-शक्ति समस्त चराचर जगत् में व्याप्त होकर ब्रह्म-आनन्द की प्राप्ति कराती है। इसलिये सद्गुरु का पद सबसे श्रेष्ठ, महान् है। सद्गुरु जन्म-मरण चक्र से छुड़ाकर, जीवन्मुक्त अवस्था प्राप्त कराते हैं।

Scanned with CamScanner

* संस्थान के सद्ग्रन्थों की सूची *

* ***सद्गुरु सदाफलदेव जी के सद्ग्रन्थ :***

१.स्वर्वेद (मूल)
२.बीजक-भाष्य
३.ऋग्वेदीय ब्रह्मविद्या-भाष्य
४.यजुर्वेदीय ब्रह्मविद्या-भाष्य
५.सामवेदीय ब्रह्मविद्या-भाष्य
६.अथर्ववेदीय ब्रह्मविद्या-भाष्य
७.पातञ्जल योग दर्शन-भाष्य
८.स्त्रीमोह-तिमिर भास्कर
९.विहंगम योग प्रकाश
१०.विश्व राज्य विधान
११.संकट-मोचन (मूल)
१२.बाल-शिक्षा भाग-१
१३.बाल-शिक्षा भाग-२
१४.आश्रम नियमावली
१५.अष्टाङ्ग-योग दर्पण
१६.ज्ञान गुदड़ी-भाष्य
१७.योग तत्त्व दर्पण
१८.सदाफल-नीति
१९.सहजोपनिषद्
२०.विज्ञान-दर्शन
२१.योग-चन्द्रिका
२२.आदर्श शिष्य
२३.शब्द-प्रकाश
२४.भारत-भ्रमण
२५.अध्यात्म-योग
२६.विहंगम-योग
२७.योग-रहस्य
२८.सद्गुरु-जीवन
२९.वनिता-शिक्षा
३०.ब्रह्मसूत्र (वेदान्त दर्शन-भाष्य)
३१.योग-शिखा
३२.शुक्र-प्रभा
३३.मधुमति
३४.भेदसार
३५.वन्दना

* ***आचार्य धर्मचन्द्रदेव जी के सद्ग्रन्थ :***

३६.स्वर्वेद-भाष्य भाग-१
३७.स्वर्वेद-भाष्य भाग-२
३८.ब्रह्मविद्या और मत-सम्प्रदाय
३९.सद्गुरु दिव्य चरितावली
४०.कबीर और ब्रह्मविद्या
४१.सद्गुरुदेव कौन थे?
४२.दिव्य जीवन कथा
४३.प्रश्नोत्तरी
४४.अमृतवाणी
४५.बोधामृत
४६.ज्ञानामृत

जिज्ञासु- सद्गुरु क्या है?

आचार्य- सद्गुरुस्वरूप में ही परब्रह्म प्राप्त होता है अर्थात् यही व्यक्त सद्गुरुमूर्ति गगन में प्रकट होकर ब्रह्मस्वरूप हो जाती है। इसलिये ब्रह्म और सद्गुरु में भेद, सद्गुरु-अंनन्य शरणसेवी, अनुरागी मुमुक्षु नहीं करते। सद्गुरु ब्रह्मशक्ति का केन्द्र है, जिससे सम्बन्ध होने पर सारे विश्व में आत्मप्रभा प्रकट करते हैं। अंतएव सद्गुरु ब्रह्मस्वरूप है। बिना सद्गुरु के ब्रह्मप्राप्ति नहीं होती। इस तत्त्व को साधन, अनुभव करके अन्तर में प्रवेश कर जानना चाहिये। यह तर्क, विवाद का विषय नहीं, बल्कि महर्षि, आप्त अनुभवी, योगतत्त्व के पूर्ण जानने वाले योगियों का प्रत्यक्ष अनुभव है।

जिज्ञासु- व्यक्त देह की पूजा क्यों होती है?

आचार्य- इस व्यक्त साकार देह में ही उस अव्यक्त सत्ता की अनुभूति हो रही है। उस महान् तत्त्व की प्रकाश इस शरीर में ही प्राप्त हुआ है। ब्रह्मप्रभा की प्रकट शक्ति इसी देह की आत्मा को जागृत कर अपना अनुभव, आनन्द प्रदान की है। आत्मा की पूजा इसी व्यक्त देह में होती है। इसलिये इस सत्ता के अनुभवद्रष्टा योगिश्वरों की देह, इन्द्रियादिकों की पूजा होनी चाहिये।

सब घट व्यापक साइयाँ, सूनी सेज न कोय।

बलिहारी वा घट को, जेहि घट परगट होय।।

उसी शरीर की बलिहारी है, जिस शरीर में जीवन्मुक्त योगी ब्रह्मतत्त्व का दर्शन किया है। इसलिए उस प्रकाश को धारण करने वाली देह की पूजा होती है। वास्तव में उस देही आत्मा की ही पूजा है, जो इस शरीर में विद्यमान होकर अनन्त शक्ति का स्रोत प्राप्त किया है।

Scanned with CamScanner

४७.केनोपनिषद्-भाष्य

* *आचार्य स्वतंत्रदेव जी के सद्ग्रन्थ :*

४८.स्वर्वेद-भाष्य (उत्तरार्द्ध)
४९.श्रीमद्भगवद्गीता-भाष्य
५०.शब्द प्रकाश-भाष्य
५१.संकट मोचन-भाष्य
५२.वन्दना-भाष्य

* *संस्थान के अन्य आध्यात्मिक साहित्य :*

५३.विहंगम योग : एक परिचय
५४.विहंगम योग : एक झलक
५५.आप सदाफल आपै विन्दु
५६.विहंगम योग प्रदीपिका
५७.सद्गुरु सदाफल-वाणी (भाग-१)
५८.सद्गुरु सदाफल-वाणी (भाग-२)
५९.सद्गुरु सदाफल वचनामृत
६०.पर्यावरण प्रदूषण एवं योग
६१.स्वर्वेद-भाष्य भाग-२ (मराठी)
६२.स्वामी जी के साथ एक वर्ष (संस्मरणात्मक)
६३.श्रीमद्भगवद्गीता (पद्यानुवाद)
६४.विहंगम योग : प्राथमिक सोपान
६५.दिव्य जीवन कथा (गुजराती)
६६.सद्गुरु की दिव्य वाणी
६७.दर्शन शास्त्र एवं मानव-धर्म
६८.सद्गुरु और ब्रह्मविद्या
६९.Sadguru Divya charitavali
७०.Who Was Sadgurudeo?
७१.Divya Jiwan katha
७२.Vigyan Darshan
७३.Code of Conduct of the Ashram
७४.Vihangam Yoga : The Science of Consciousness
७५.The Introduction of Vihangam Yoga
७६.Lectures on Vihangam Yoga

♥

Scanned with CamScanner

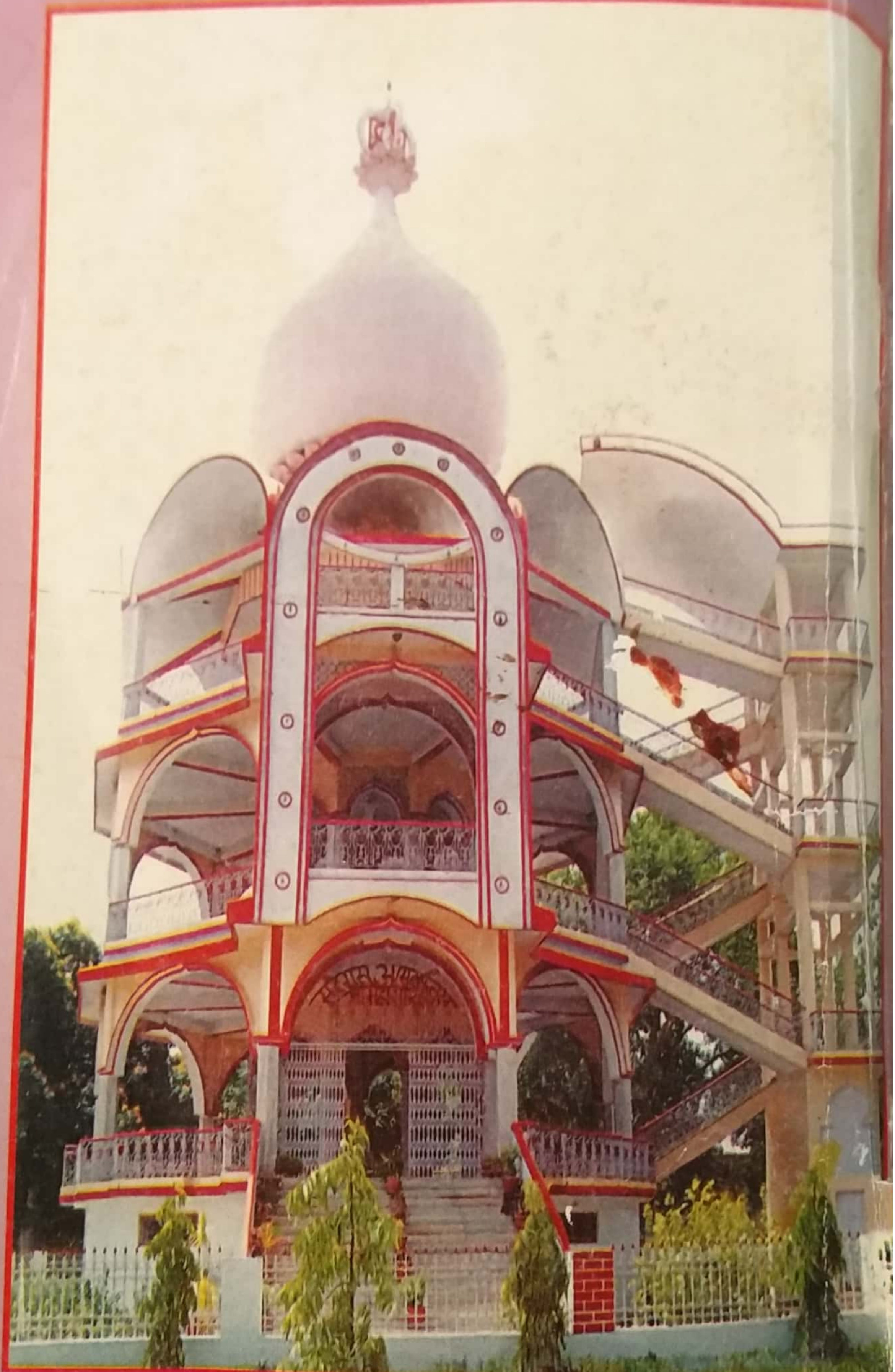

महामन्दिर, झूँसी, प्रयाग (उ०प्र०)

Scanned with CamScanner